अध्याय–1(अ)
संगीत के परिचायिक शब्द

संगीत के आधार भूत तत्त्व :–

नाद :– युगों से चली आ रही संगीत की अनादि परम्परा का मूल हैं नाद। नाद अर्थात् न कार व दकार (प्राण और अग्नि)। अर्थात् प्रकृति के मूल भूत तत्त्वों में दो तत्त्वों का योग। प्राण और अग्नि सरलीकृत भाषा में कानों द्वारा प्राप्त संवेदना है।

'' स्थिर एवं नियमित आन्दोलनों द्वारा उत्पन्न मधुर ध्वनि नाद कहलाती है। मधुर व कर्णप्रिय होने के कारण संगीत में इस ध्वनि का प्रयोग होता है।''

'' नंकारं प्राणं नामानं दकारनलं विदुं
जातः प्राणाग्नि संयोगात्तेन नादोऽ भिधीयते।
शारंगदेव (संगीत रत्नाकर)

' नाद ' धातु का अर्थ हैं ध्वनि। नकार के ' न ' व दकार के ' द ' प्रथमाक्षरों से नाद शब्द की उत्पत्ति हुई।

हृदय भावों को अभिव्यक्त करने के लिये मनुष्य जिन अव्यक्त ध्वनियों अर्थात् नादों का आश्रय लेता आया है वे सार्वभौम व सनातन हैं। रोदन, चीत्कार कराहना एवं हॅसना इत्यादि क्रियाएं जिन ध्वनियों को जन्म देती हैं उनका निर्बाध एवं निरपवाद प्रयोग सदैव एक सा ही रहा हैं । विविध भावों को अभिव्यक्ति देने वाली ये ध्वनियाँ अर्थात् नाद ही संगीत के स्वरों की जननी है।

सम्पूर्ण जगत नाद के अधीन हैं। जड़ चेतन, चरमानव व अन्य प्राणी शरीर सभी में नाद व्याप्त है। भौतिक विज्ञान के सिद्वान्तों के सिद्वान्तों के अनुसार किसी भी द्रव्य के कम्पित होने के प्रयोजन से नाद की उत्पत्ति होती है। आहत व अनाहत नाद ''स नादो द्विविधो मतः''। शास्त्रों में नाद के दो भेद माने गये हैं '' अनाहतों हतश्चैव '' (संगीत मकरन्द नारद)
नाद की उत्पत्ति दो प्रकार से होती है
प्रथम, बिना किसी घर्षण एवं आघात से।

ये उत्पादित स्वयंभू ध्वनि है। इसे ' अनाहत' नाद कहते हैं। अनाहत नाद योग साधना की अनुभूति है। यह संगीतोपयोगी नहीं होता क्योंकि यह सबकों सुनाई नहीं देता यह नाभि कमल में निरन्तर बिना किसी आघात के प्रतिध्वनित होता रहता है। सिद्व पुरुष इसी नाद की साधना करके मोक्ष प्राप्त करते हैं व अनाहत नाद का प्रत्यक्ष संगीत से कोई सम्बन्ध नहीं हैं।

आहत नाद –

जो नाद किसी घर्षण, आघात, द्वारा उत्पन्न होता है। उसे आहत नाद कहते हैं। ''अर्थात् ''किसी माध्यम के द्वारा'' किसी उत्पादक के द्वारा किसी वस्तु के कम्पायमान होने की संवेदना जिसे कानग्रहण करे आहत, नाद कहलाती है।''

समस्त सृष्टि में होने वाले नाद जैसे पक्षियों का कलरव, नदियों का बहाव, झरने के स्वर, वायु विचरण की सरसराहट सभी में आहत नाद विद्यमान है। प्रकृति ही सर्व प्रथम आहत नाद की सृष्टिकर्त्ता है।

आहत नाद ही संगीत का उत्पत्ति कर्त्ता है। समस्त संगीत आहत नाद का ही परिणाम है।

मनुष्य में वायु के आघात से हृदय व कंठ और तालु में जो नाद उत्पन्न होता है वही आहत नाद है। आहत नाद के लिये किसी भी द्रव्य का दूसरे द्रव्य पर आघात होकर कम्पित होना प्रथम आवश्यकता है।

संगीतोपयोगी नाद उत्पत्ति के लिये तीन प्रयोजनों का होना आवश्यक है–

1. प्रहार द्वारा –

तबला, सितार, सरोद, तानपुरा आदि वाद्यों पर हाथ से या किसी वस्तु के माध्यम से प्रहार करने पर इस वर्ग का नाद उत्पन्न होता हैं।

2. घर्षण द्वारा –

वायलिन सारंगी सुरबहार इसराज आदि वाद्यों में जो गज की सहायता से घर्षण किये जाने पर उत्पन्न नाद को इस वर्ग में रखा जा सकता है।

3. वायु को भरकर या निकालकर –

शहनाई बांसुरी माउथ आर्गन, हारमोनियम आदि वाद्य इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। शरीर के मध्य जब वायु कंठ की स्वर तंत्रियों को घर्षण कर मुख द्वारा बाहर निकलती है तो यही नाद उत्पत्ति का कारण बनती है।

नाद की विशेषतायें –

नाद की तीन प्रमुख विशेषतायें हैं :–

(1) तारता (Pitch) (2) तीव्रता (Intensity) (3) गुण (Timber)

तारता –

'तारता ' से तात्पर्य नाद की उच्चता व निम्नता से है। अर्थात ' ध्वनि ' का वेग उच्च स्तर पर जा रहा है अथवा निम्न स्तर पर। जब ध्वनि उत्पादक वस्तु के कम्पन्न अधिक होंगे ध्वनि निम्न आयेगी और कम्पन कम होने पर ध्वनि की तारता बड़ती जायेगी। जैसे सा से क्रमशः रे व आगे के स्वरों पर बड़ने से कम्पनों की संख्या अधिक होती जायेगी। जैसे किसी तार वाद्य के मध्य षड़ज की आन्दोलन संख्या 240 हैं तो तार षड़ज की 480 ।

ध्वनि कम्पनों की न्यूनाधिक संख्या स्वर को उच्च अथवा नीचा बनाती है। संगीत में सप्तक का आधार यही नाद की विशेषता है।

सा से क्रमशः रे, ग, म, प, ध, नि जैसे स्वर ऊँचा होता जायेगा वैसे वैसे कम्पन संख्या में भी परिवर्तन आता जायेगा।

तीव्रता –

एक ही नाद जब धीमा व तेज सुनाई दे, तो वह तीव्रता कहलाती है। इससे यह ज्ञात होता है कि ध्वनि कितनी समीप और कितनी दूरी से प्राप्त हो रही है। एक ही मानव जब गुनगुनाता है तो ध्वनि समीप सुनाई देती है किन्तु जब वह गाता है तो ध्वनि दूर सुनाई देती है। यही ध्वनि माइक्रोफोन रेड़ियों शक्ति द्वारा सम्पूर्ण संसार में सुनाई देती है। यही नाद की तीव्रता की विशेषता है जिसे Volume, Intensity

अथवा Magnitude भी कहते हैं।

इस तीव्रता का सम्बन्ध तारता से कदापि नही है। जैसे यदि किसी ध्वनि उत्पादक वस्तु को हम दूर ले जायें तो ध्वनि कम सुनाई देने लगती है किंतु उसकी तारता वही रहती है।

उदाहरण के लिये हम सा को किसी के पास बैठकर गायें तो आवाज अधिक सुनाई देगी, किन्तु यदि हम उससे दूर बैठकर सा ही गायें तो आवाज़ कम सुनाई देगी।

कानों द्वारा ध्वनि की तीव्रता को ग्रहण करने की सीमा निश्चित है। कम से कम 36 आन्दोलन व 3 संख्या वाली ध्वनि हम सुन सकते हैं। इसे वैज्ञानिक भाषा में 'श्रुति देहली' (Enpasonic sound) कहते हैं। एवं अधिक से अधिक 30000 आंदोलन संख्या वाली ध्वनि हमारे कान ग्रहण कर सकते हैं इसे पीड़ा देहली (Ultra sonic-sound) कहते हैं।

नाद की तीव्रता आघात पर स्थित है। आघात जितना जोर से होगा नाद की तीव्रता उतनी ही अधिक होगी। आघात जितना क्षीण होगा ध्वनि या नाद की तीव्रता भी कम हो जायेगी। नाद का यह गुण कम्प विस्तार (Amplitude) पर निर्भर करता है। कम्पन का समय जितना अधिक होगा ध्वनि की तीव्रता भी उतनी ही अधिक होगी।

उदाहरणार्थ तानपुरे का तार धीरे–2 छेड़ने पर उसमें हल्का कम्पन होगा हमें ध्वनि भी कम तीव्र सुनाई देगी किन्तु यही तार जोर से छेड़ने से ध्वनि भी कर्कश एवं तीव्र सुनाई देगी। सूक्ष्म नाद में कम्पनों का विस्तार कम तथा बड़े नादों में कम्पनों का विस्तार अधिक होता है।

संगीत विविध प्रकार के वाद्यों की बनावट व निर्माण प्रक्रिया में विज्ञान के इसी नियत की उपयोगिता है।

गुण –

ध्वनि की इस विशेषता से सहज ही अनुमान हो जाता है कि ध्वनि किसी के द्वारा उत्पन्न हो रही है।

विविध वाद्यों द्वारा उत्पन्न ध्वनियाँ सहज ही पहचान ली जाती है। विभिन्न वाद्यों को एक साथ एक ही स्वर में बजाने पर प्रत्येक वाद्य की ध्वनि तारता समान होने पर भी उनसे उत्पन्न ध्वनियों को पृथक् रूप में पहचाना जा सकता है यही नाद का गुण (Timber) अथवा जाति है। स्त्री, पुरुष, बालक सभी के स्वरों व 'ध्वनि में विविधता ' इसी जाति अथवा गुण पर निर्भर करती है। किसी वस्तु में कम्पन होने के कारण उसके साथ वायु में भी कम्पन होते हैं। कोई नाद अकेला उत्पन्न नहीं होता। प्रत्येक मूल नाद के साथ कुछ अन्य नाद भी उत्पन्न होते हैं। इनमें प्रथम ध्वनि को मौलिक ध्वनि से दुगने, तिगुने और चौगुने आकृतियों के होते हैं जिन्हें उप स्वर कहते हैं।

इन्हीं उप स्वरों के कारण नाद एक दूसरे से अलग हो जाता है और इसी पर नाद की जाति निर्भर करती है। नाद की इन्हीं गुणों से संगीत का आस्वादन किया जाता है। भाषा की तुलना में नाद के प्रभाव का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। संगीत में श्रोताओं के मन में रस का संचार केवल नाद द्वारा होता है।

श्रुति –

श्रुति भारतीय सप्तक का मूलाधार है।

शास्त्रों श्रुति की परिभाषा ' श्रूयते इति श्रुति ' अर्थात् जो सुनाई दे वही श्रुति है किन्तु प्रासंगिक

काल में श्रुति की यह परिभाषा तर्क सम्मत नहीं है। क्योंकि कानों द्वारा अनेक ध्वनियों का ग्रहण होता हैं अनेक ध्वनियों में रञ्जकता नहीं होती आकर्षण नहीं होता व मधुरता का अभाव रहता है। ऐसी ध्वनियां संगीतोपयोगी नहीं हो सकती। इसलिये कलाकार ऐसी ध्वनि का लक्ष्य करता है जो मधुर हो। रञ्जक हो, जो स्पष्ट पूर्ण रूपेण सुनाई दे सके, जो भावाभिव्यक्ति में समर्थ हो।

श्रुति ध्वनि का वह सूक्ष्मतम भाग है जिससे ध्वनि का परिमाण लगाया जा सकता है, जो राग में प्रयुक्त होने पर स्वर तथा अप्रयुक्तावस्था में अपने निकटवर्ती स्वरों की सहायता करे, ऐसी ध्वनि ही सच्ची श्रुति और संगीतोपयोगी ध्वनि कहलाती है। अर्थात् ऐसा छोटे से छोटा नाद जो संगीतोपयोगी हो स्पष्ट एवं अलग सुना व समझा जा सके श्रुति कहलाता है।''

'अभिनव राग मंजरी में श्रुति की स्पष्ट परिभाषा इस प्रकार दी गई है

नित्य गीतोपयोगीत्वं भिज्ञेयत्वम् प्युत्।

लक्षे प्रोक्तं सुपर्याप्तं संगीत श्रुति लक्षणम्।''

नाद संगीतोपयोगी होने से श्रुति का कारण बनता है।

किसी भी ध्वनि को उत्पन्न करते समय आरंभ में जो आघात किया जाता है वह श्रुति है और उसके बाद जो अनुरणन होता है वह स्वर है। यह एक नाद है जो छोटे से छोटा है यह स्पष्ट तथा पृथक् सुनाई देता है व गाया बजाया जाता है।

शास्त्रानुसार हृदय स्थान में 22 नाड़ियां हैं उनके सभी स्थान स्पष्ट सुनाई दिये जा सकते हैं। सुनने में स्पष्टता के कारण श्रुति के 22 भेद माने जा सकते हैं।

तस्य द्वाविंशर्तिभेद श्रवणात् श्रुतयोर्मताः।

हृदयाभ्यन्तर संलग्ना नाट्यों द्वाविंशतिर्मताः।।

(स्वर मेल कलानिधि के अनुसार)

ये नाद क्रमशः एक दूसरे से ऊँचे बढ़ते गये हैं। इन्हीं बाइस नादों को श्रुति कहते हैं। दुगने ऊँचे स्वर पर तेइसवीं अर्थात् प्रथम श्रुति आ जाती है। श्रुति के इन 22 भेदों के नामकंरण शास्त्रों के अनुसार निम्न रूप से किया गया।

तीव्रा कुमुद्वती मंदा छंदोवती दयावती।
रंजनी रक्तिका रौद्री क्रोधवती प्रसारिणी।
प्रीति मार्जिनि क्षिति रक्ता संदीपिन्यव लापिनी।
मंदति रोहिणी रम्या उग्रा क्षोभिणी के तिच
रण्यातानि श्रुति–नामानि पूर्वा चार्यैः कुमद्विती।''

अर्थात्

अर्थात् तीव्रा, कुमुद्वती, मंदा, छन्दोवती, दयावती, रंजनी, रक्तिका, रौद्री क्रोधावज्रिका, प्रसारिणी, प्रीति, मार्जनीं, क्षिति, रक्तिका, संदीपनि, आलापिनी, मंदती, रोहिणी, रंम्या, उग्रा, क्षोभिणी।

पूर्वाचार्यों ने बाइस श्रुतियों का नामकरण इस तरह से किया है, यह श्रुतियाँ अपने में विभिन्न प्रकार की भावनाओं को समाहित किये रहती हैं जिनकी अभिव्यक्ति कुशल व तपस्वी संगीतज्ञों द्वारा यथासमय की जाती हैं।

मध्य काल में संगीत – समाज में यह चर्चा रही है कि 22 श्रुतियों का प्रयोग न तो प्राचीन समय में हुआ और न ही आधुनिक युग में किंतु यह अवधारणा नितान्त मिथ्या है। 22 श्रुतियों का प्रयोग प्राचीन

समय में भी गायक, अपने गायन में किया करते हैं और आधुनिक युग में गायक अपने सार्मथ्य द्वारा श्रुति दर्शन अपनी प्रस्तुति में करते हैं।

विभिन्न रागों में मुख्य श्रुतियाँ स्वर में परिवर्तित हो जाती हैं। और अन्य श्रुतियॉ गौण किन्तु कुशल गायक अपनी गायन कुशलता द्वारा स्वर को किंचित् कम या अधिक लगाकर कुशलता से ठुमरी अथवा ख्यालाप में स्वर के आस–पास लगने वाली श्रुतियों का दर्शन कराते हैं। दूसरे, राग में मुख्य स्वरों के अतिरिक्त अन्य श्रुतियों पर क्रमशः अनुवादी स्वर विचरते हैं।

श्रुति जाति –

विभिन्न प्रकार की भावनाओं से ओत–प्रोत ये श्रुतियाँ अपनी प्रकृति के अनुसार तीन अथवा चार प्रकारों में विभाजित हो जाती हैं जिन्हें ' श्रुति जाति ' कहते हैं। भरत नाट्यशास्त्र में श्रुतियों की पाँच जातियाँ बताई जाती हैं।

1. दीप्ता 2. आयता 3. करुणा 4. मृदु 5. मध्या।

प्रत्येक श्रुति जाति का उद्देश्य रसोत्पत्ति माना है
सूक्ष्म ध्वनियाँ या श्रुतियां रसात्मक होती हैं।
दीप्ता जाति में – वीर, रौद्र, अद्भुत
आयता जाति में – हास्य
मृदु जाति में – श्रृंगार
मध्या जाति में – श्रृंगार तथा हास्य
करुणा जाति में – करुण, वीभत्स, भयानक।

महर्षि भरत व उनके पश्चात्वर्ती आचार्यों ने श्रुतियों की जातियों को रसोत्पत्ति का द्योतक बताकर प्रत्येक जाति की रसनिष्पत्ति निश्चित की है।

श्रुति स्वर विभाजन :–

नाद सुषुप्तावस्था में श्रुति व व्यक्तावस्था में स्वर कहा जाता है। भारतीय संगीत में यह विशेषता रही है कि यहाँ नाद के एक ही स्थान में 22 नादों का प्रयोग होता चला आ रहा है। जो नाद प्रयुक्त नहीं हुआ वह श्रुति तथा जो प्रयुक्त हो गया वह स्वर है। इस तथ्य से प्राचीन काल से वर्तमान समय तक सभी शास्त्र कार सहमत हैं। श्रुति व स्वर में अन्तर उतना ही है, जितना एक स्केल और उसकी सूक्ष्म इकाइयों में। प्राचीन ग्रंथकरों ने इसे स्पष्ट रूप में अंकित किया है। मतंग मुनि श्रुति व स्वर के पारस्परिक सम्बन्ध में जाति और व्यक्ति दूध और दही, प्रदीप और घट के रूप में देखते हैं।

पं0 अहोबल के अनुसार स्वर सर्प के तथा श्रुति सर्प की कुण्ड़ली के समान है। श्रुतियाँ छोटा नाद है स्वर श्रुति विशेष नाद है। श्रूतियों से ही स्वर का निर्माण होता है। किसी राग में 22 श्रुतियों में किन्हीं 7 श्रुतियों का विशेष चयनित कर स्वर की संज्ञा दी जाती है जिनसे रागों का निर्माण होता है। श्रुति स्वयं रंजक नहीं होती परन्तु स्वर को रंजक बनाने में सहायक होती है। श्रुतियाँ तरल होती हैं जबकि स्वर स्थिर होते हैं। कभी–2 किसी राग में स्वर अपने स्थान से कुछ उतरा या चढ़ा हुआ लगता है। अर्थात् स्वर अपनी विशिष्ट श्रुति से कुछ श्रुति नीचे लगता है जैसे दरबारी राग में कोमल गंधार अपनी श्रुति से नीचे वाली श्रुतियों पर स्थित है इसीलिये उसे अतिकोमल गांधार कहा गया है।

व्यवहार में सरलता के लिये सप्तक के एक स्थान की बाइस श्रुतियों में से सात मुख्य श्रुतियाँ चुन ली गई जिन्हें **शुद्ध स्वर** कहा गया। इन सातों स्वरों को क्रमशः षड़ज़, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम,

धैवत व निषाद की संज्ञा दी गई। उच्चारण की सुविधा के लिये इन्हें सा, रे,, ग म प ध नि नाम दिये गये। इस शुद्व स्वरों को प्राचीन आचार्यो ने विभिन्न श्रुतियों पर स्थापित कर श्रुति स्वर विभाजन आधार बनाया। आदिम आचार्य शारंग देव ने श्रुति विभाजन को निर्दिष्ट करने हेतु यह क्रम दिया –

' चतुष्चतुष्चवैं षड़ज़ मध्यम पंचमौः।
द्वैद्वैनिषाद गंधारों त्रिस्त्री ऋषभ धैवेतौ।''

अर्थात् सा म प को चार–2 श्रुतियों निषाद व गंधार को दो–दो श्रुतियों तथा ऋषभ व ' धवैत को क्रमशः तीन–तीन श्रुतियों में विभाजित किया गया।

प्राचीन ग्रंथ कारों के अनुसार श्रुतियों का स्वर विभाजन निम्न प्रकार से है।

बाइस श्रुतियों पर प्राचीन व आधुनिक शुद्व स्वर स्थापना

संख्या	नाम	प्राचीन मतानुसार	आधुनिक मतानुसार
1.	तीव्रा	–	षड़ज
2.	कुमद्वती	–	–
3.	मंदा	–	–
4.	छंदोवती	षड़ज़	–
5.	दयावती	–	ऋषभ
6.	रंजनी	–	–
7.	रक्तिका	ऋषभ	–
8.	रौद्री	–	गंधार
9.	क्रोधा	गंधार	–
10.	वज्रिका	–	मध्यम
11.	प्रसारिणी	–	–
12.	प्रीति	–	–
13.	मार्जनी	मध्यम	–
14.	क्षिति	–	पंचम
15.	रक्ता	–	–
16.	संदीपनी	–	–
17.	आलापिनी	पंचम	–
18.	मदन्ती	–	धैवत
19.	रोहिणी	–	–
20.	रम्या	धैवत	–
21.	उग्रा	–	निषाद
22.	क्षोभिणी	निषाद	–

श्रुतियों पर स्वर विभाजन में मतभेद के कारण भारतीय संगीत में शुद्व स्वर परिवर्तित हो गया। प्राचीन ग्रंथकारों के अनुसार शुद्व स्वर सप्तक हमारे आधुनिक स्वर सप्तक से भिन्न था।

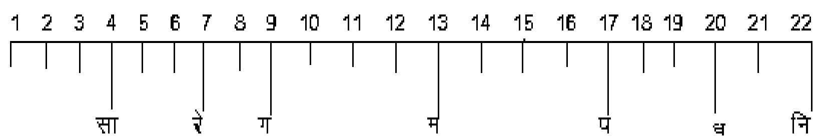

13 वीं शताब्दी तक भरत व शारंगदेव इस युग के प्रमुख ग्रंथकार रहे और उन्होंने अपने ग्रंथों क्रमशः नाट्यशास्त्र एवं संगीत रत्नाकर में उपर्युक्त विवेचनानुसार स्वरों को अपनी अंतिम श्रुति पर स्थापित किया। उनके पश्चात्वर्ती ग्रंथकारों ने लोचन अहोबल ह्रदयनारायण देव व श्रीनिवास ने भी इन्ही ग्रंथकारों का अनुसरण किया। किन्तु 19वीं शताब्दी पं. प्रमुख विद्वान भातखण्डे, प्रो0 ललित किशोर सिंह औंकार नाथ ठाकुर आदि विद्वानों ने अपने ग्रंथों में स्वरों को उनकी अंतिम श्रुति पर न मानकर प्रारम्भिक श्रुति पर स्थापित किया।

आधुनिक श्रुति स्वर व्यवस्था

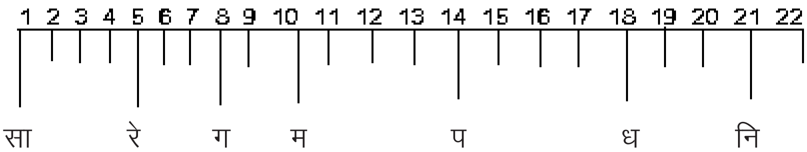

इस स्वर स्थापना में अन्तर का यह परिणाम हुआ कि दोनों कालों में मध्यम और पंचम को छोड़कर अन्य शुद्व स्वर स्थानों में अन्तर हो गया। प्राचीन व मध्यकाल का ऋषभ स्वर सातवीं पर तथा गंधार नवीं श्रुति पर हैं।

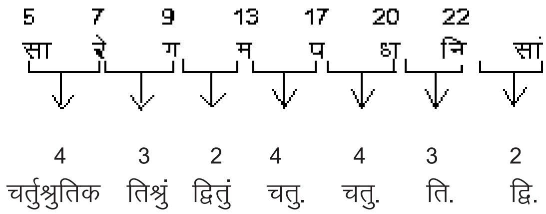

आधुनिक स्वर सप्तक

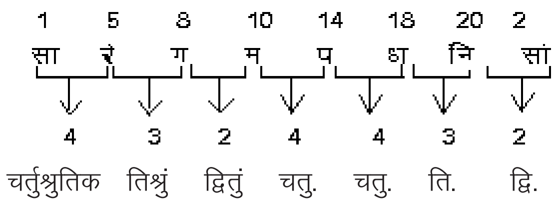

प्राचीन शुद्व स्वर सप्तक हमारे आधुनिक काफी थाट के सदृश हैं जिसमें गंधार मध्यम व निषाद तार षड़ज़ के स्वरान्तर हमारे काफी थाट के सदृश हैं।

स्वरः—

श्रुतियों से उत्पन्न वह स्वयं भू ' नाद जिससे अनुरणन हो, मन का रंजन हो, और कर्ण प्रिय हो, स्वर कहलाता है।

उर्पयुक्त विवेचना में श्रुति व स्वरान्तर की स्पष्ट रूप से व्याख्या की गई हैं जिससे स्वर का स्वरूप परिलक्षित हो जाता है। अर्थात् बाइस नादों में से चयनित आरोही अवरोही क्रम की 12 वे ध्वनियां जो एक दूसरे से ऊपर जाती हुई क्रम से उत्पन्न हों उन्हें स्वर कहा गया।

भारतीय संगीत का मूल आधार स्तम्भ स्वर हैं, जिस पर राग का पूरा भवन स्थित है। इन्हें 12 स्वरों में से सात स्वर को पुनः चयनित कर जिस स्वरावली को निर्मित किया गया उन्हें शुद्व स्वर कहा गया जिनके नाम क्रमशः षड़ज़, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धवैत, निषाद रखे गये।

भारतीय शुद्व स्वर सप्तक का श्री गणेश, वैदिक काल में उदात्त अनुदात्त तथा स्वरित तीन रूपों में हुआ कुछ संगीतज्ञ इन्हें स्वर तथा कुछ इन्हें तीन प्रकार के स्वर मानते हैं। वैदिक मंत्रों का उच्चारण व गायन इन्हीं तीन स्वरों पर विद्यमान था। पश्रतु महर्षि पाणिनी द्वारा इन्हें तीन प्रकार के स्वर कहा गया, जिसके आधार पर उदात्त के गंधार और निषाद अनुदात्त के ऋषभ व धैवत और स्वरित के षड़ज़ मध्यम व पंचम स्वर प्रकट हुए। सर्व प्रथम भरत कृत नाट्य शास्त्र में ये सम्पूर्ण स्वर एक निश्चित क्रम के साथ अवतरित हुए तथा भरत ने इन सात स्वरों का परिचय 22 श्रुतियों के निवास स्थान 4, 3, 2, 4, 4, 3, 2 के विभाजक सिद्वान्त के रूप में दिया। महर्षि भरत ने इस सात स्वरों के अतिरिक्त अन्तर गान्धार स्वर जो ग्यारवहवीं श्रुति पर स्थित थातथा काकली निषाद दूसरी श्रुति पर दर्शाये तथा इन्हें विकृत स्वरों की संज्ञा दी।

पश्चात्वर्ती ग्रंथकारों में पं. शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर महान ग्रंथ हैं। विकृत स्वरों के निर्माण की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन्होंने शुद्व व विकृत स्वर मिला कर 14 स्वर निर्दिष्ट किये हैं।

विकृत स्वरों में भरत कृत काकली निषाद को कैशिक निषाद कहा है उनके स्वर निम्न हैं :–

कैशिक नि, काकली नी, च्युत सा, अच्युत सा, विकृत रे, ग व साधारण ग, अन्तरंग, च्युत म, अच्युत म, कैशिक प, प विकृत ध व नि निम्न हैं।

इसके पश्चात् लोचन ने राग तरंगिणी में 7 शुद्व व 10 विकृत स्वर वर्णित किये हैं। जिनमें विकृत स्वरों के लिये तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम ग व निषाद व कोमल तथा अतितीव्रतम ग, तीव्रतर म व कोमल धैवत हैं।

पं. रामामात्य ने ''स्वर मेलकलानिधि'' में सात शुद्व व नौ विकृत स्वर तथा अन्य ग्रंथकरों ने भी इसी अनुसरण में अपने–2 शुद्ध तथा विकृत स्वरों को संज्ञायें दी।

आधुनिक युग में पं. विष्णुनारायण भारतखण्ड़े ने स्वरों की विकृतियों के लिये 3 संज्ञाएं दी शुद्व कोमल व तीव्र जिसमें सा, रे, ग, म, प, नि शुद्व स्वर तथा रे, ग, ध, नि चार कोमल स्वर जो अपनी नियत श्रुति से दो श्रुति नीचें स्थित थे तथा तीव्र मध्यम जो अपनी श्रुति से दो श्रुति ऊपर स्थित था।

(1)	सा रे, ग, म, प, ध, नि	–	शुद्व
(2)	रे ग ध नि	–	कोमल स्वर
(3)	म		तीव्र स्वर

इस तरह सात शुद्ध व 5 विकृत मिलकर 12 स्वरों का समूह बना।

शास्त्रज्ञों ने स्वरों के चार प्रकार निर्दिष्ट किये हैं। (1) वादी स्वर (2) संवादी स्वर (3) अनुवादी (4) विवादी

वादी स्वर –

राग का मुख्य स्वर जिससे राग को पहचाना जा सके वादी स्वर कहलाता है। शास्त्र में इस स्वर के बारे में वर्णित हैं

'' प्रयोगे विपुलः स्वरः वादी राजात्र गीयते ''

राग में एक ऐसा प्रबल स्वर होता है जिसका प्रयोग राग के अन्य सभी स्वरों से अधिक होता है और राग रूपी राज्य में वह राजा के समान है। वादी स्वर पर प्रत्येक राग की विशेषता निर्भर करती है। इसीलिये वादी स्वर को प्रधान स्वर, जीव स्वर बहुल स्वर अथवा अंश स्वर भी कहते हैं।

संवादी –

राग का द्वितीय महत्त्पूर्ण स्वर संवादी कहलाता है। जिस प्रकार राज्य में प्रशासन व्यवस्था के लिये राजा के अतिरिक्त अन्य सचिवों की आवश्यकता रहती हैं उसी प्रकार स्वरों का राजा ' वादी ' के अतिरिक्त संवादी स्वर की आवश्यकता रहती हैं।

''वादी स्वरस्तु स्यान्मंत्री सं वादित्संज्ञितः।
स्वरा विवादी बैरी स्यादुनुवादी च मूत्यवत्।।''

संवादी स्वर का उपयोग वादी की अपेक्षा कम किन्तु अन्य स्वरों की तुलना में अधिक होता है। यह वादी स्वर का सहायक बनकर उससे अटूट सम्बन्ध स्थापित किये रहता है। वादी स्वरों में षड़ज़, मध्यम भाव या षड़ज़ पंचम भाव रहता है और नॉ और तेरह श्रुतियों का अथवा तीन या चार स्वरों का अंतराल रहता हैं।

अनुवादी –

वादी संवादी के अतिरिक्त राग में प्रयुक्त अन्य स्वर अनुवादी कहलाते है। इन्हें सेवक या अनुचर की उपमा दी गई है। इन्हें सेवक या अनुचर की उपमा दी गई है। किसी भी राग में कम से कम पाँच तथा अधिक सात स्वर लगते। अतः किसी राग में संवादी व वादी स्वरों के अतिरिक्त लगने वाले अनुवादी स्वर तीन या पाँच हो सकते हैं।

विवादी स्वर :– किसी राग में प्रयोग न किये जाने वाले स्वर को विवादी स्वर कहते हैं। शास्त्र के नियमों के अनुसार रागों में विवादी स्वर का प्रयोग करने से राग के स्वरूप को हानि पहुँचती है। अतः उनका प्रयोग वर्ज्य है, किन्तु अल्पमात्रा में गायन को सुन्दर बनाने के लिये तान इत्यादि में क्षणिक प्रयोग करने की भी आज्ञा शास्त्रों में दी गई है।

अभिनव राग मंजरी में पं. भातखण्ड़े के अनुसार यदि कुशलतापूर्वक कण के रूप में विवादी स्वर का प्रयोग कर दिया जाये और राग की रञ्जकता अगर इससे बढ़ती हो तो मानक स्पर्श के नाते यह कृत्य क्षम्य समझा जायेगा।''

किन्तु यह कृत्य अति सावधानीपूर्वक से करना चाहिये कुशल गायक ऐसा करके अपने गायन को अधिक मुखर बना श्रोताओं की प्रशंसा पाते हैं।

सप्तक –

सप्तक स्वरों को क्रम में रखकर निश्चित श्रुत्यान्तर पर स्थापित किया जाये तो वह ' सप्तक ' कहलाता है। सप्तक में स्वर क्रमवार ऊंचाई से एक के बाद एक आना आवश्यक है सप्तक के लिये प्राचीन ग्रंथकारों ने ग्राम की संज्ञा दी।

भरत कृत नाट्य शास्त्र में सप्त स्वरों को क्रमशः 4, 3, 2, 4, 4, 3, 2 सा – 4 रे की 3 ग की 2 म की 4 प की 4 ध की 3 व निषाद की 2 श्रुतियों में विभाजित कर जिस ग्राम को निर्मित किया गया।

सा	रे	ग	म	प	ध	नि
4	3	2	4	4	3	2

ग्रामः–' ग्राम ' का तात्पर्य उस समूह से है जिसमें ग्राम की भाँति स्वर विचरण करते हैं।

भरत काल में ग्रामों के तीन प्रकार प्रचलित हुए :–

(1) षड़ज़ ग्राम – वह ग्राम जिसमें पंचम को सत्रहवीं श्रुति पर स्थापित किया वह षड़ज़ ग्राम है

सा	रे	ग	म	प	ध	नि
4	7	9	13	17	20	22

(2) मध्यम ग्राम–

जिस ग्राम में पंचम चर्तुश्रुतिक ना होकर त्रिश्रुतिक था अर्थात् पंचम 16 वीं श्रुति पर स्थापित था वह मध्यम ग्राम कहा गया।

म	प	ध	नि	सा	रे	ग	13 16 20 22
4	3	4	2	4	3	2	4 4 9

गंधार ग्राम –

गंधार स्वर के प्रारंभ होने वाला ग्राम गंधार ग्राम कहलाया। इसमें गंधार चतुेर्श्रुतिक, व म त्रिश्रुतिक, प त्रिश्रुतिक, ध त्रिश्रुतिक, नि चतुेर्श्रुतिक, सा त्रिश्रुतिक व रे द्वि श्रुतिक स्वर हैं। भरत ने इसके बारे में अपने ग्रंथ नाट्य शास्त्र में वर्णित किया कि मध्यम के बेसुरे पन के कारण इसे उपयोग में लाया गया।

किंवदन्ती यह भी है कि गंधार ग्राम का प्रयोग केवल गन्धर्वों द्वारा स्वर्ग में किया गया।

ग	म	प	ध	नि	सा	रे
4	3	3	3	4	3	2

ग्रामों को आधुनिक युग में ' सप्तक ' की संज्ञा दी गई षड़ज़ ग्राम के स्वरान्तरों पर श्रुतियों की स्थापना कर आधुनिक शुद्व स्वर सप्तक बना। जिसमें पं. भातखण्ड़े ने स्वरों का स्थान अंतिम श्रुति पर न कर प्रथम श्रुति पर किया , जिससे प्राचीन स्वर सप्तक हमारे काफी थाट के समान पाया गया और हमारे शुद्ध स्वर सप्तक बिलावल थाट का है। सप्तक 3 प्रकार के माने गये हैं (1) मन्द्र (2) मध्य (3) तार

मध्य सप्तक – हमारी सहज आवाज़ जिस स्वर से प्रारम्भ होकर सहजता से जिस स्वर की ऊँचाई तक जाये अर्थात् अपनी सहज आवाज़ में हम बोलते हैं और उसके लिये हमें असहज नहीं होना पड़ता है अर्थात् मध्य सा से क्रमशः रे ग म प धं नि सां तक सहजता से गाते जाये वह मध्य सप्तक हैं। भातखण्ड़े जी ने अपनी स्वर लिपि में इस सप्तक के लिये कोई भी चिन्ह निर्धारित किया।

सा रे ग म प ध नि

मन्द्र सप्तक–

मध्य षड़ज़ से नीचे जिस सीमा तक हमारी आवाज़ पहुँचे वह मन्द्र सप्तक हैं। क्रमशः सा से नीचे नि ध प म ग रे जो स्वर हैं इन्हें मन्द्र सप्तक के स्वर कहा जाता है। शास्त्रकारों ने अभ्यास के लिये मन्द्र सप्तक की साधना को अत्यन्त उत्तम बताया है। इन्हें खरज के स्वर भी कहा जाता हैं। भातखण्ड़े जी ने इनके लिये स्वर लिपि स्वरों के नीचे बिन्दु अंकित करने के लिये निर्देशित किया है

नि़ ध़ प़ म़ ग़ रे़ आदि

तार सप्तक –

मध्य निषाद से ऊपर जिस सीमा तक हमारी आवाज़ जाती है, उन स्वरों को तार सप्तक के स्वर कहां जाता है। मध्य नी से ऊपर सां रे ग म प ध नि इत्यादि। कुशल गायक तार सप्तक के स्वरों का अभ्यास

कर अपनी गायकी में चमत्कारिता उत्पन्न करते हैं। परवीन सुल्ताना अपने गायन में तार सप्तक की चरम ऊँचाइयों को स्पर्श कर अपने गायन को विलक्षण रूप देती हैं। भातखण्ड़े जी तार सप्तक के स्वरों के लिये स्वर के ऊपर बिन्दु अंकित करते है।

सां रें गं मं पं धं निं आदि।

वक्र स्वर –

आरोह अथवा अवरोह में किसी एक स्वर तक जाकर पीछे के स्वर पर लौट आते हैं परन्तु पहले वाले स्वर को छोड़कर या टालकर आगे का स्वर कहते हैं। यहां जिस स्वर तक जाकर पीछे लौटते हैं तथा फिर जिसे आगे बड़ने पर टाल दिया जाता है उसे वक्र स्वर कहते है। उदाहरण के लिये जैसे प ध नि ध सां। अथवा प म ग म ग रे सां इत्यादि।

वर्ण:–

वर्ण गायन की प्रत्यक्ष क्रिया में अंलकारों के आरोह अवरोहात्मक अभ्यास को वर्ण कहते हैं सात स्वरों के आधार पर किस प्रकार संगीत की सृष्टि का निर्माण होता हैं यह समझने के लिये वर्ण का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है जाति तथा राग के लक्षणों में वर्ण ऐसी ही गान–विस्तार शैली का संकेत करता है जिसमें स्वरों का विस्तार प्रस्फुटित होता है अभिनव राग मंजरी के पृष्ठ 6 पर अंकित है

गानक्रियोच्चते वर्ण् स चर्तुधा निरूपितः।,
स्थाययारोह्यवरोही च संचारीत्यथ लक्षणम्।

अर्थात् गायन गाने की क्रिया को वर्ण कहते हैं। मतंग मुनि ने वर्ण की परिभाषा इस तरह वर्णित की है।

'' वर्ण शब्देश गान मुच्यते ''

अर्थात् गान के प्रसंग में गीत के पदों को लेकर विविध स्वर गुच्छों से सजाने की क्रिया वर्ण है। वह वर्ण का विस्तार तीनों सप्तकों में हैं।

पं. अहोबल ' अपने ग्रंथ संगीत पारिजात ' में वर्ण को पारिभाषित करते हुए लिखते हैं कि गायन कि क्रिया का स्वरों की पदादि से विस्तार करने को वर्ण कहते हैं।

नाट्य शास्त्रानुसार वर्ण के स्थान पाठ्य तथा गेय दोनों में समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

वर्ण भरत संगीत की पारिभाषिक संज्ञा है यद्यपि नाट्यशास्त्र में वर्ण की परिभाषा नहीं है, तथापि भरतोक्त वर्णो के उल्लेख से स्पष्ट होता है यह गायन की एक क्रिया है।

वर्णों की संख्या सभी ग्रंथकारों ने चार ही मानी हैं। हमारे आधुनिक संगीत में भी वर्णों की संख्या में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। राग में वर्ज्य अवर्ज्य स्वरों का ध्यान रखते हुए सभी वर्णों की सहायता से राग का विस्तार होता है।

(1) स्थाई वर्ण –

किसी भी एक स्वर को बार–2 गाने या बजाने की क्रिया को स्थाई वर्ण कहते हैं। जैसे सा, सा, सा, रे, रे, रे इत्यादि।

(2) आरोही वर्ण –

षड़ज़से निषाद की और स्वरों आरोह क्रम में गाने की क्रिया को आरोही वर्ण कहते हैं। जैसे यदि हम सा से ऊपर 'नि' तक क्रमशः सा रे ग म प ध नि इस प्रकार गायन करेंगे तो वह आरोही वर्ण होगा।

(3) अवरोही वर्ण –

निषाद से षड़ज़ तक नीचे तक जाने के क्रम को अवरोही वर्ण कहते हैं। अर्थात् ऊँचे स्वर से नीचे पर गाने की क्रिया को अवरोही वर्ण कहते हैं। जैसे सां नि ध नि प म ग रे।

(4) संचारी वर्ण –

स्थायी आरोही, अवरोही तीनों वर्णों के संयोग को अभ्यास करने की क्रिया को संचारी वर्ण कहा जाता है उसमें कभी कोई स्वर ऊपर चढ़ता है कोई स्वर नीचे आता है, तो कोई स्वर पुनः गाया जाता है। जैसे सा सा सा रे म म ग रे ग म प प प, नि ध प म म, ग रे आदि। किसी भी गायन में चारों वर्णों का होना आवश्यक होता है।

किसी भी राग का स्वरूप व कर्णप्रिय बन सकता है जब उसके गाने बजाने का ढंग स्वरों का चलन राग में लगने वाले स्वरों की प्रकृति सही व स्पष्ट हो। केवल राग में आरोह–अवरोह लगने से ही वह स्पष्ट नहीं होता। स्वर व वर्णों से सुशोभित ध्वनि को ही राग कहते हैं। जहां एक राग में स्वरों का महत्त्व पाया जाता है वहीं दूसरी ओर वर्णों का भी महत्त्व है।

कई बार कई रागों में स्वर संगति भी वर्णों का सूचक होती है जैसे गौड सारंग में वर्णों की विविध‍ता ही राग का मुख्य रागांग बन जाता है। जैसे सा ग रे म ग प म ध प अथवा सां, ध, नि, प, म, प, ग, म, रे, सां।

वर्ण वह गान क्रिया हैं जिसमें संगीत मय लय है, जिसमें चारों वर्ण का समावेश हैं, जो राग में सुन्दरता व रंजकता बढ़ाती हैं वर्ण वह गान क्रिया है जिसकी संगीतात्मक लय व चारों वर्णों का समावेश किसी भी राग में सुन्दरता व रंजकता उत्पन्न करती हैं इन्ही वर्णों के नियमित रूप को अलंकार कहते हैं।

रागों के निर्माण में वर्णों का अत्यन्त योगदान है।

राग :– बोल सामान्य व्यवहार की भाषा में ' राग ' शब्द से पर्याय है उस भावना से जो मोह से बांध लेती हो, या आकर्षणयुक्त हो इसलिये सामाजिक भाषा में राग व द्वेष उन वृतियों का नाम हैं जो व्यक्ति सामाजिक बंधनों में लिप्त हो।

संगीत में ' राग ' शब्द का पर्याय इस विवेचना से कुछ साम्य है अर्थात् ऐसी रचना जिसका प्रथम कारण आकर्षित करने वाला अर्थात् मोह लेने वाला अर्थात् रंजन करने वाला हैं।

शास्त्रों में राग की परिभाषा सर्वप्रथम मतंग ने अपने ग्रंथ में बहुउद्देशीय सम्पूर्ण रूप से निम्न रूप में दी हैं।

'' योऽयं ध्वनि विशेषस्तु स्वर वर्ण विभूषितः
रंजको जन चित्तानाम् सःच राग कथितो बुधैः।''

'' अर्थात् स्वरों और स्थायी वर्णों से विभूषित वह ध्वनि विशेष राग है जिससे मनुष्यों के मन का रंजन होता है।'' विशिष्ट स्वर वर्ण से अथवा ध्वनि भेद के द्वारा जो जन रंजन में समर्थ है वह राग है।''

' रंजन ' के कारण ही राग की संज्ञा ' राग ' है यही राग की व्युत्पत्ति है।

भारतीय संगीत के प्रथम शास्त्रकार महर्षि भरत ने ' राग ' शब्द का वर्णन नहीं किया उनके काल में ' जाति ' का अनुसरण किया जाता था। ग्राम मूर्च्छना व जाति का परिवर्तित रूप ' राग ' के रूप में प्रकाशित हुआ।

राग शब्द का उद्‌गम ' रंजन ' धातु से है इस धातु में ' धग ' प्रत्यय जोड़ने से ' राग ' शब्द का निर्माण हुआ।

भारतीय राग पद्वति को महर्षि मतंग का योगदान महत्त्वपूर्ण योगदान हैं। किन्तु राग का पूर्ण विकास शारंगदेव काल में हुआ। सभी लक्षणों से युक्त राग की अगर यह परिभाषा दी जाये कि '' राग

एक निश्चित स्वर समूह है जो स्वर सप्तक में विचरता हुआ रंजकता उत्पन्न करता हैं भावों की पूर्ण रूपेण अभिव्यक्ति करता और चित्र को प्रंसन्नता प्रदान करता हैं, जिसमें आरोह अवरोह विद्यमान रहते हैं, जो वादी संवादी व अनुवादी स्वरों की सहायता से अनेक प्रकार की स्वर लहरियां उत्पन्न करता है जो कला के क्षेत्र में मूल रस का रूप धारण कर गीत और उसके अन्य अवयवों द्वारा रस का संचार करता है जिसमें स्वर अपने तीव्रता तारता गुणों का प्रदर्शन कर कुशलता से कर सकता है तो राग का धर्म और कर्म पूर्णरूपेण परिलक्षित हो जाता है'' तभी सार्थक होगा ।

राग में सभी स्वर स्थायी सा से अपना तादात्म्य स्थापित रखते हैं रागों की संरचना स्वर संवाद पर आधारित हैं।

राग का प्रारम्भिक आलाप, अंश या वादी स्वर का बार–बार उच्चारण अनुकूल सप्तकों में स्वरों का संचार विशिष्ट स्वरों पर विश्राम स्वरों के प्रयोग में विशिष्ट अनुपात राग की सम्पूर्ण औड़व जैसी जातियों का सम्यक् निर्वाह ये सभी सम्मिलित रूप से राग का विशिष्ट प्रभाव या वातावरण उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं जिससे श्रोता के हृदय में असीम आनन्द की सृष्टि होती है और वह अपने चारों तरफ के वातावरण से निर्लिप्त हो, राग में तन्मय हो जाता है।

नाद बल का यही साक्षात्कार संगीत की वास्तविक रसानुभूति हैं।

राग रचना के आवश्यक तत्त्व :–

स्व0 पं. भातखण्ड़े जी ने उत्तरीय भारतीय संगीत के रागों के सम्बन्ध में निम्न मानदण्ड़ निर्धारित किये हैं

(1) किसी राग का किसी ना किसी मेल से जन्म होना आवश्यक है।
(2) राग के लिये निश्चित आरोह–अवरोह होना अनिवार्य है।
(3) प्रत्येक राग के लिये वादी, संवादी, अनुवादी, विवादी स्वर अपेक्षित है।
(4) राग के लिये कम से कम पाँच स्वरों का होना आवश्यक है इससे कम स्वरों का समूह तान है राग नहीं।
(5) किसी भी राग में मध्यम व पंचम एक साथ वर्जित नहीं हो सकते।
(6) किसी भी राग में स्वर के शुद्ध व विकृत रूप एक साथ प्रयुक्त नहीं हो सकते।
(7) रंजक होना राग का सर्वाधिक आवश्यक लक्षण हैं।

स्वरों की संख्या अनुसार रागों के तीन भेद हैं जिन्हें ' राग जाति ' कहा जाता है:–

(1) सम्पूर्ण (2) औडव (3) षाड़व

(1) औड़व राग:– जिस राग में सप्त स्वरों में से दो स्वरों का वर्ज्य कर दिया जाये तथा आरोह अवरोह में पाँच स्वरों का प्रयोग हो उन्हें औड़व राग कहा जाता हैं

(2) षाड़व राग :– जिस राग में एक स्वर का वर्ज्यकर षड़ स्वरों का अर्थात् 6 स्वरों का प्रयोग आरोह अवरोह में किया जाये, उन्हें षाड़व राग कहा जाता हैं।

(3) सम्पूर्ण राग :– जिन रागों में सप्त स्वरों का पूर्ण रूपेण प्रयोग किया जाता है अर्थात् सातों स्वर आरोह अवरोह क्रम के प्रयुक्त हों उन्हीं को सम्पूर्ण राग कहा जाता हैं।

इन तीनों जातियों से नौ उप जातियों का निर्माण हुआ।

(1) सम्पूर्ण – सम्पूर्ण :– जिनके आरोह अवरोह दोनों में सातों स्वरों का प्रयोग हो वे राग सम्पूर्ण–2 राग कहलाते हैं।

(2) सम्पूर्ण षाड़व :– जिस राग के आरोह में सात स्वर तथा अवरोह में 6 स्वर विद्यमान होते हैं वह

सम्पूर्ण षाड़व राग कहलाता है।

(3) सम्पूर्ण औड़व :– जिस राग में आरोह में सात तथा अवरोह में पाँच स्वर प्रयुक्त होते हैं उन्हें सम्पूर्ण औड़व राग कहा जाता है।

(4) षाड़व सम्पूर्ण :– जिस राग में आरोह में 6 तथा अवरोह में 7 स्वर प्रयुक्त होते हैं उन्हें षाड़व सम्पूर्ण राग की संज्ञा दी जाती है।

(5) षाड़व षाड़व :– जिस राग में आरोह तथा अवरोह दोनों में 6–4 स्वर लगते हैं उन्हें षाड़व–षाड़व राग कहा जाता है।

(6) षाड़व औड़व :– आरोह में 6 तथा अवरोह में 5 स्वर प्रयुक्त होने वाला राग षाड़व – औड़व कहलाता है।

(7) औड़व–सम्पूर्ण :– जिसके आरोह में पॉच स्वर तथा अवरोह में सात स्वर लगते हैं ऐसे राग को औड़व–सम्पूर्ण कहा जाता है।

(8) औड़व–षाड़व :– जिसके आरोह में 5 तथा अवरोह में 6 स्वरों का प्रयोग होता हैं उन्हें औड़व षाड़व व राग कहा जाता है।

(9) औड़व–औड़व :– जिनके आरोह अवरोह दोनों में 5–5 स्वर लगते हैं उन्हें औंड़व–औंड़व राग कहा जाता है।

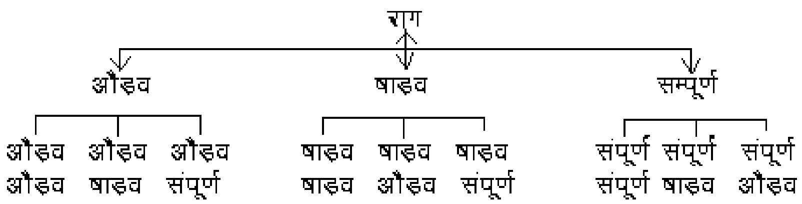

राग की इन जातियों से 10 थाटों के द्वारा अनन्य रागों की निर्मिति हुई।

थाटः– 'थाट' शब्द प्राचीन रूप की मेल शब्द की परिकल्पना का आधार हैं। आधुनिक काल में प्राचीन मूर्च्छनाओं के स्थान पर मेल तथा थाट उपलब्ध हुए हैं।

आधुनिक संगीत में मूर्च्छना प्रणाली का त्याग कर सभी छोटे बड़े आवश्यक अंतरालों को सप्तक की सीमा में रखा गया। जिस प्रकार मूर्च्छनायें प्राचीन जाति गायन के लिये स्रोत रही उसी प्रकार ये मेल अथवा थाट हमारे रागों के लिये स्रोत रहें।

'' मेलः स्वर समूहास्याद्राग व्यंजक शक्तिमान् ''

अर्थात् स्वरों का वह समूह जिसमें राग उत्पन्न करने की क्षमता हो वह मेल कहलाता है। (संगीतपारिजात)

सोमनाथ कृत 'राग विबोध' में 'थाट' शब्द को ''मूला धार मिला थाट इति भाष्याम्' अर्थात् 'मेल को भाषा में थाट कहते हैं' कहा गया हैं।

थाट या मेल पद्धति को जन्म देने का श्रेय राग तरंगिणी के लेखक पं. लोचन को हैं। उन्होंने संगीत के इतिहास में राग–रागिनी पद्धति के स्थापन पर मेल या संस्थान पद्धति की रचना की। और 12 मेलों के अन्तर्गत 75 रागों को विभाजित किया।

इनके पश्चात् पं. रामामात्य व व्यंकट मरवी ने मेल पद्धति को अपनाते हुए 72 मेलों की स्थापना की। पं. व्यंकट मरवी ने गणितीय आधार लेकर 72 मेलों की रचना की और उनमें रागों को वर्गीकृत किया। उनकी यह कृति दक्षिण भारतीय संगीत में सुरक्षित है। किन्तु उत्तर भारतीय संगीत में थाटों से रागों को

वर्गीकरण करने का श्रेय पं. भातखण्ड़े जी को हैं, जिन्होंने पं. व्यंकटभैरवी की गणितीय पद्धति को आधार मानकर 32 थाटों की रचना की।

जिनमें से 10 थाट की स्वरावलियों को मुख्य मानते हुए इनमें रागों का वर्गीकरण किया। जिसका आधुनिक काल में सभी मनीषियों ने अनुसरण किया और राग वर्गीकरण की इस पद्धति वैज्ञानिक स्थिरता पाई।

थाट द्वारा राग निर्माण होने के लिये थाट में इन विशेषताओं का होना आवश्यक है :–

1. थाट सदैव सम्पूर्ण जाति का अर्थात् सातों स्वर से युक्त हो।
2. थाट में राग उत्पन्न करने की क्षमता या सामर्थ्य हो।
3. थाट में सातों स्वर क्रमानुसार होने चाहिये।
4. थाट गाया नहीं जाता। वह राग वाची इंगित स्वर समूह है।
5. थाट में रंजकता का होना आवश्यक नहीं इसमें वर्ण नहीं होते।
6. थाट में आरोह–अवरोह दोनों न होकर मात्र आरोह ही होता है।
7. थाट पहचानने के लिये उनमें से उत्पन्न हुए किसी राग का नाम दे दिया जाता है।

भातखण्ड़े जी द्वारा निर्मित इस थाट–राग वर्गीकरण के दस थाट निम्न हैं।

1. कल्याण थाट :–

सा रे ग मं प ध निं सां

2. बिलावल थाट :–

सा रे ग म प ध नि सां

3. खमाज थाट :–

सा रे ग म प ध नि सां

4. भैरव थाट :–

सा रे ग म प ध नि सां

5. पूर्वी थाट :–

सा रे ग मं प ध नि सां

6. मारवा थाट :–

सा रे ग मं प ध नि सां

7. काफी थाट :–

सा रे ग म प ध नि सां

8. आसावरी थाट :–

सा रे ग म प ध नि सां

9. भैरवी :–

सा रे ग म प ध नि सां

10. तोड़ी :–

सा रे ग मं प ध नि सां

इन्ही थाटों के अन्तर्गत सभी रागों को विभाजित कर दिया जाता है। किंतु परिवर्तन के इस युग में कुछ संगीतकारों को थाट के अतिरिक्त रागरंग को राग वर्गीकरण का भी आधार मानते हैं। तथा कुछ रागों को किसी भी थाट के अन्तर्गत नहीं माना जा सकता, अनेक रागों के बारे में अनेक विरोधाभास उपलब्ध है। अपनी मौलिक सूझ बूझ व स्वविवेक से भिन्न–2 रागों के संदर्भ में मत मतान्तरों को माना जा सकता है।

भाग (ब)

तानपुरे का सचित्र वर्णन

भारतीय संगीत में स्वर देने के लिये प्रमुख वाद्य तानपुरा है। तानपुरे को तम्बूरी या तानपुरा भी कहा जाता है। महाराष्ट्र तथा भारत के अनेक भागों में 'तानपुरा' शब्द के स्थान पर तंबूरा शब्द अधिक प्रचार में आया है। तम्बूरा नाम गन्धर्व तुम्बरु के नाम पर पड़ा। पाणिनीय शिक्षा में वर्णित 'अलाबु' वीणा का ही परिवर्तित रूप चारतार वाला तानपुरा है जो आज भारतीय संगीत का मूलाधार हैं। इस तम्बूरे अथवा तानपुरे का विधिवत् उल्लेख सर्वप्रथम संगीत पारिजात अहोबल कृत ग्रंथ में हुआ। तम्बूरे का सूत्र शारंगदेव निर्मित त्रितन्त्री वीणा से भी है ऐसा उल्लेखित हैं।

अबुल फजल ने ' आइने–अकबरी ' में तम्बूरे को स्वर वीणा कहा है।

गायकों के लिये तानपुरा एक महत्त्वपूर्ण वाद्य है। इसमें किसी गाने की सरगम नहीं मिलती अपितु गायन के साथ स्वर संगति हेतु इसका प्रयोग किया जाता है। गायक अपने गले के धर्मानुसार इसमें अपना स्वर कायम कर लेते हैं। तानपुरे को संगति से गायक को मुख्य षड़ज व पंचम आधार स्वरों की झनकार मिलती रहती है जिससे वह बेसुरा नहीं होता। उत्तर तथा दक्षिण दोनों संगीत पद्धतियों में तानपुरे का प्रयोग गायन वादन तथा नृत्य तीनों के साथ स्वर देने के लिये किया जाता हैं। श्रुति शुद्धता तथा षड़ज स्वर के स्थायित्व भारतीय संगीत का महत्त्वपूर्ण अंग होने के कारण इस वाद्य का निरन्तर बजाया जाना अनिवार्य माना जाता है।

वर्तमान समय में तानपुरा छोटे व बड़े आकार की दृष्टि से दो प्रकार के होते है। जिन्हें महिलाओं का तानपुरा व पुरुष तानपुरा कहते हैं। तुम्बे के आकार डॉड की चौड़ाई व तारों के सप्तक परिवर्तन से दोनों तानपुरों को पृथक् किया जा सकता है।

महिला तानपुरों में तुम्बा छोटी डॉड कम चौड़ा तथा प्रयुक्त किये जाने वाले तार पुरुष तानपुरे की अपेक्षा अधिक ऊँचे सप्तक वाले होते हैं। पुरुष तानपुरों का तुम्बा बड़ा गोलाई लिये होता है जिससे उसकी धीर गंभीर ध्वनि पुरुष गायकों के स्वर को गुंजायमान करती हैं। पुरुष तानपुरों के तार नीचे सप्तक वाले तार होते हैं।

तानपुरे का अंग वर्णन –

(1) तुम्बा :– तुम्बा तानपुरे का आधार लॉकी अथवा कद्दू का सूखा खोल होता है जो अन्दर से बिल्कुल खोखला होता है। इसके अन्दर ध्वनि गुंजित होती हैं।

(2) तबली :– तुम्बे को ढँकने के लिये पतली लकड़ी का ढक्कन तबली कहलाता है। जिस पर तानपुरे की घुड़च या ब्रिज लगी रहती है। इसे हाथी दांत अथवा हड्डियों की खपच्चियों से सुन्दर आकृतियाँ लगाकर तानपुरे की सजावट की जाती है।

(3) घुड़च या ब्रिज :– तुम्बे व तबली पर स्थित लकड़ी अथवा हड्डी से निर्मित एक छोटी चौकी स्थित होती हैं जिस पर तार रखे जाते हैं। इसे ब्रिज या घुड़च कहा जाता है।

(4) लंगोट अथवा कील :– तुम्बे की पैंदी में तार बॉधने हेतु एक कील लगी होती है अथवा कभी लकड़ी पर पट्टी लगाकर छेद कर दिये जाते हैं जिससे तारों के एक सिरे को बांधा जाता है जिसे लंगोट अथवा कील कहा जाता है।

(5) डॉड :– लकड़ी की लम्बी पोली डंडी जिस पर एक पतली तख्ती लगी होती हैं इसी पतली तखती पर से तार खूँटियों तक जाते हैं यद्यपि उसे छूते हुए नही जाते हैं जिसे डॉड कहा जाता है इस डॉड के किनारे तारदान या अंटी व खूटियॉ रहती हैं तथा दूसरे छोर को तुम्बे से जोड़ दिया जाता है।

(6) अटी अथवा तारदान व तारगहन :– खूँटियों की तरफ डॉड पर हड्डी की दो पट्टियाँ लगी होती हैं जिनसे एक पर तार रखे होते हैं और दूसरी में छिद्र होते हैं जिनमें तार पिरोये जाते हैं। पहली पट्टी जिस पर तार रखे होते हैं अर्थात् जिस पर से तार ऊपर से होकर तार खूटियों तक जाते हैं। उसे अटी कहते हैं। दूसरी पट्टी जिसमें तार पिरोये जाते हैं और सुराखों में से तार खूटियों तक जाते हैं उन्हें तारदान अथवा तारगहन कहते हैं।

(7) खूँटियॉ :– तानपुरे के अग्रभाग अटी व तारगहन के पीछे, तारों को बाँधने के लिये लकड़ी की जो कुंजियॉ लगी रहती हैं उनमें तार कसे रहते हैं जिन्हें घुमाने पर तारों को ढीला अथवा कसा जाता हैं। उन्हे खूँटियाँ कहा जाता हैं।

(8) गुलू :– तुम्बा और डॉड जहाँ जुड़ते हैं वहाँ पतली सी हड्डी की खपच्ची लगी रहती है जिसे गुलू कहा जाता है।

(9) मपकस अथवा मोती :– धुरच व कील के बीच में तार जिन मोतियों में पिरोय जाते हैं तथा ऊपर या नीचे करने से स्वरों का सूक्ष्मतम परिवर्तन किया जाता है उनकों मनका अथवा मोती कहा जाता हैं ये मनके गोल, चपटे तथा पान के आकार के होते हैं तथा कॉच, हांथी दांत, से निर्मित होते हैं।

तार :– तानपुरे में चार तार या पाँच तारों का प्रयोग होता है जो नीचे लंगोट से प्रारम्भ होकर खूंटियों से बँधे होते हैं। तारों में अंतिम तार खरज का तार कहलाता है जो पीतल से बना होता है इसे पंचम व मंद सा से मिलाया जाता है।

तानपुरे के मध्य दो तारों को जोडे का तार कहते हैं। इन्हें तार षड़ज में मिलाया जाता है। इन दोनों तारों की आकृतियों में क्दाचित/किंञ्चित अंतर होने पर तानपुरा मिला हुआ नहीं होता। ये दोनों स्टील से निर्मित होते हैं।

तानपुरे का चौथा तार अथवा प्रथम तार स्टील का होता है इसे राग में प्रयुक्त स्वरों के आधार पर मध्यम, पंचम व निषाद में मिलाया जाता है जिस राग में पंचम नहीं होता उसमें यह मध्यम में तथा जिस राग में निषाद अधिक प्रबल रहता हैं, उसमें यह निषाद में मिलाया जाता है।

जवारी :– तानपुरे को जवारी अन्य वाद्यों से भिन्न होती है तथा जवारी को घुड़च के ऊपर इस प्रकार बनाया जाता है कि झंकार समान बनी रहे। इसके लिये एक धागा घुड़च व तारों के मध्य इस प्रकार रख कर सरकाया जाता है स्वर की झंकार विविध हो जाती है। एक अच्छे तानपुरे की विशेषताओं में अच्छी जवारी भी सम्मिलित है। कुशल वाद्य निर्माता घुड़च की घिसाई कर इसे कुशल बनाते हैं। इस प्रकार झंकार पैदा करने के लिये प्रयोग किसी अन्य वाद्य में नहीं होता।

तानपुरे की बैठक :– तानपुरे को एक विशेष मुद्रा में बैठकर बजाया जाता है। इसके लिये एक पैर मोड़कर तथा एक पैर जमीन पर रखकर बैठना चाहिये। अपने सामने पैरों के बीच तानपुरे का तुम्बा रखकर खड़ा करना चाहिये। बाएं हाथ से तुम्बे को सम्भाले रखना चाहिये तथा दाहिने हाथ से तानपुरे के

तारों को छेड़ना चाहिये। तानपुरे के तारों में पहला तार तर्जनी अंगुली से तथा शेष तीनों तारों को मध्यमा अंगुली से छेड़ना चाहिये। चारों तारों को छेड़ने में निरन्तरता बनी रहनी चाहिये। तारों को हल्का छेड़ना चाहिये किसी भी तार को खींच कर नहीं बजाना चाहिये अन्यथा स्वर की श्रुतियों में अन्तर आ सकता है।

स्वर संवाद की दृष्टि से तानपुरा सर्वश्रेष्ठ वाद्य है इसमें गायक को स्वर से श्रुत्यान्तर को समझना एवं स्वयंभू स्वरों को समझने में सहायता मिलती है। एक कुशल गायक की सर्व प्रथम कसौटी सर्वप्रथम तानपुरा मिलाना ही है।

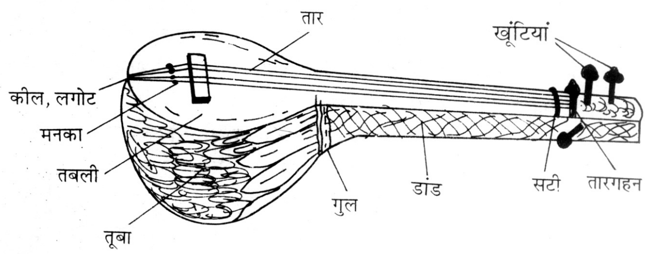

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1 :– स्वरों पर श्रुति का सही विभाजन बताइये ?

(अ) 4,3,2,4,4,3,2, (ब) 4,3,4,4,3,4,2,

(स) 1,2,3,4,5,6,7, (द) 4,4,3,2,4,4,4, ( )

प्रश्न 2 :– विकृत स्वर कितने प्रकार के होते हैं ?

(अ) 1 (ब) 2

(स) 5 (द) 4 ( )

प्रश्न 3 :– संवादी स्वर को समझाइये ?

प्रश्न 4 :– षडज ग्राम की संरचना बताइये ?

प्रश्न 5 :– राग जाति समझाइये ?

प्रश्न 6 :– सप्तक समझाइये ?

प्रश्न 7 :– थाट को विस्तार से समझाइये ?

प्रश्न 8 :– नाद को विस्तार से समझाइये ?

प्रश्न 9 :– तान पुरे का सचित्र वर्णन करो ।

19

प्रसिद्ध संगीतज्ञ

पं. नारायण मौरेश्वर खरे

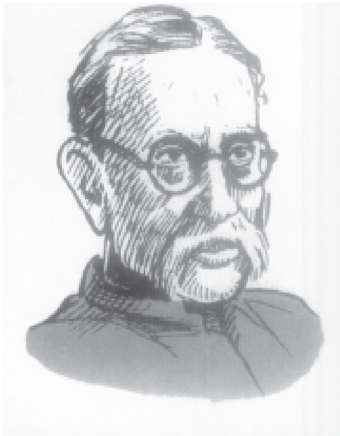

अल्लादिया खां

पं. विष्णु नारायण भातखण्डे

पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर

उस्ताद फैयाज़ खाँ

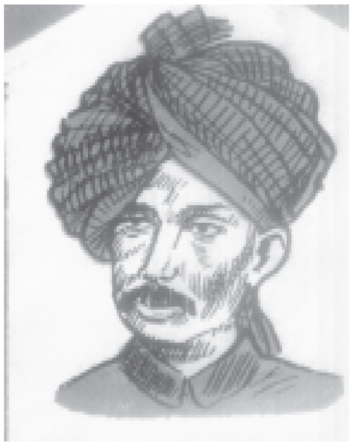

गुलाम मुस्तफा अली

अध्याय 2
संगीतज्ञों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व

तानसेन :– भारतीय संगीत की अनादि परम्परा की श्रृंखलायें मिंया तानसेन के नाम से सारा संगीत जगत परिचित है। भारत वर्ष का कोई भी संगीत प्रेमी '' तानसेन '' के नाम से अज्ञात नहीं है। सम्राट् अकबर के दरबार के नवरत्नों में से एक तानसेन ने अपने व्यक्तित्व को संगीत जगत को समर्पित कर दिया।

तानसेन का जन्म 1532 ई0 में ग्वालियर के बेहट गांव में हुआ। इनका असली नाम तन्नी मिश्र था। और इनके पिता का नाम था मकरन्द पाण्डे। भगवान शंकर की विशेष स्तुति के परिणाम स्वरूप ही इनके पिता को इनकी प्राप्ति हुई। बालक तानसेन को 5 वर्ष पश्चात् ही वाणी प्राप्त हुई। मुहम्मद गौस फकीर के आशीर्वाद स्वरूप भी तानसेन का जन्म हुआ। बालक तानसेन का स्वर बहुत ही मधुर था। ये बचपन में सभी जानवरों की आवाजों का गले में हू बहू उतार लिया करते थे। ऐसे ही एक प्रयास को स्वामी हरिदास ने सुना और वे इनसे अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्होंने इन्हें अपना शिष्य बना लिया वृंदावन में स्वामी हरिदास के सानिध्य में ये संगीत साधना में तल्लीन हो गये। स्वामी जी की विशेष कृपा के फलस्वरूप इन्हें संगीत की उच्च शिक्षा प्राप्त हुई।

उच्च शिक्षा प्राप्त कर ये रींवा नरेश राजा रामचन्द्र के दरबार में दरबारी गायक बन गये।

ग्वालियर की गूजरी रानी मृगनयनी ने अपने संगीत मंदिर में शिक्षा प्राप्त करने वाली शिष्या हुसैनी से इनका विवाह करा दिया। मोहम्मद गौंस के अंतिम समय में इन्होंने उनकी ग्वालियर में बहुत सेवा की और उनकी मृत्यु पर्यन्त तानसेन उनकी सम्पूर्ण सम्पत्ति के वारिस हो गये। इनके चार पुत्र के एक पुत्री वंशज थें जिनके नाम क्रमशः सुरतसेन, अमृतसेन शरतसेंन व विलास खां थे।

तानसेन की संगीत निपुणता व गायन की प्रसिद्धि मुगल सम्राट अकबर ने सुनी और उन्हें रीवाँ से दिल्ली अपने दरबार में सम्मान पूर्वक बुलवाया तथा अपने नवरत्नों में सम्मिलित कर लिया। दरबारी गायक तानसेन की ख्याति सम्पूर्ण फैलने लगी। वहाँ उन्होंने सम्राट अकबर की प्रशंसा में कई ध्रुवपदों की रचना की तथा कई रागों का निर्माण किया जिनमें मिंया मल्हार, दरबारी मिंया की तोड़ी, मिंया की सारंग आदि राग प्रमुख हैं।

तानसेंन ने वीणा और सितार के आधार पर सुरबहार नामक वाद्य की रचना की। वीणा के आधार पर रबाब का भी निर्माण किया। तानसेन द्वारा रचित तीन ग्रंथों का उल्लेख मिलता हैः–

(1) श्री गणेश स्तोत्र

(2) राग माला

(3) संगीत सार

तानसेंन की मृत्यु सन् 1585 में दिल्ली में हुई और ग्वालियर में मुहम्मद गौस की समाधि के पास ही इनकी समाधि बनाई गई। उनकी समाधि पर प्रतिवर्ष बहुत बड़ा संगीत समारोह आयोजित होता है जिसमें ख्याति नाम गायक अपने गायन वादन से तानसेंन को श्रृद्धांजली अर्पित करते हैं। प्रसिद्व लेखिका अतिया बेगम तानसेंन के बारे में लिखती हैं ''अतुल्य आदर उत्पन्न करने वाले सितारे की भांति तेजोमय कलाकार तानसेंन अंधकार मयी शताब्दियों में चमक रहा है।''

प्रसिद्ध महान ग्रंथ आइने अकबरी में अबुल फज़ल ने भी लिखा '' पिछले एक हजार साल सें तानसेंन की तुलना में गानेवाला हिन्दुस्तान में पैदा नहीं हुआ।''

पं0 जसराज :—

पं0 जसराज का नाम वर्तमान संगीत समाज में अत्यन्त प्रसिद्ध है। वे विख्यात गायक हैं और अपने गायन की आध्यात्मिक अभिव्यक्त और प्रकाण्ड साधना के लिय प्रसिद्ध हैं।

पं0 जसराज का जन्म 20 फरवरी 1930 को हिसार में हुआ। आप के परिवार में संगीतमय वातावरण रहने के कारण बाल्यकाल से ही संगीत विरासत में प्राप्त हुआ। आपने प्रारम्भिक संगीत शिक्षा अपने पिता पं0 मोतीरामजी से जो कि कश्मीरी राज्य में दरबारी गायक थे उनसे तथा अग्रज पं0 मणीलालजी से प्राप्त की। हवेली संगीत में निष्णात्ता — बाबा श्याम मनोहर गोस्वामी से प्राप्त हुई। आपने पं0 मणीलालजी के साथ युगल बंदी के कई वर्षों तक विभिन्न शहरों में संगीत के कार्यक्रम किये। स्वामी हरिदास संगीत समारोह नेपाल, बनारस व सम्पूर्ण भारत में अपनी कला वाणी का परचम फहराया हुआ है। ईश्वर प्रदत/ईश्वरीय गुणों से युक्त आपकी वाणी ओजमयी व माधुर्य लिये हुए हैं। सुर व लय का मनोहर संयोग आपके गायन में परिलक्षित है। आप मेवाती घराने के स्थापित कलाकारों में से विलक्षण प्रतिभा के धनी कलाकार हैं। '' घराना परम्परा से उदीयमान होने के फलस्वरूप भी आप कलाकार के लिये घराना परम्परा को बंधन मानते हैं। आपका मानना है कि कलाकार को घराने की जटिल परम्पराओं को तोड़ते हुए अपनी कला का स्वतन्त्र प्रसार व प्रकाश जनता के समक्ष प्रस्तुत करना चाहियें।

पं0 जसराज के सफलतम व्यक्तित्व की परिकल्पना उनके समूचे विश्व में शिष्य वृन्दों व उनकी कला निष्णात्ता से की जा सकती है। पं0 जसराज स्कूल ऑफ म्यूजिक फॉउनडेशन बैंकुवर, न्यू जर्सी, संयुक्त, राज्य उसके माध्यम नित नये शिष्य संगीत का आत्मसात कर ख्याति प्राप्त कर रहे हैं।

पं0 जी ने देश विदेशों में भ्रमण कर भारतीय संगीत के प्रचार प्रसार का जो महान कार्य किया है उसके लिये भारत सरकार तथा विभिन्न संस्थाओं ने समय—समय पर विविध उपाधियों से आपकों अलंकृत किया है।

भारत सरकार द्वारा प्रदत पद्म श्री, पद्म भूषण, सुरेर गुरु पश्चिमी बंगाल, दीना नाथ मंगेशकर अवार्ड, कला सम्राट वाराणसी, अलाउद्दीन संगीत रत्न अवार्ड, संगीत रत्न, राजीव गांधी अवार्ड, संगीत शिरोमणि, रस राज अवार्ड, महाराष्ट्र गौरव, संगीत रत्न अवार्ड एवम् जायन्ट्स इन्टरनेशनल उपाधियॉ आपके व्यक्तित्व की सफलतम अभिव्यंजनाये हैं।

आप मुम्बई में निवास करते हैं। संगीत जगत के विद्यार्थी व प्रशंसक आपके निरन्तर उज्ज्वल संगीत के प्रकाशित पथ पर अग्रसर होने की शुभ कामनायें करते हैं।

पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर :—

स्वतन्त्र भारत में भारतीय संगीत के महान प्रचारक प्रसारक संगीतज्ञ श्री पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी का जन्म 18 अगस्त 1872 में महाराष्ट्र के करून्वाड़ नामक स्थापन पर हुआ।

बाल्यकाल में ही एक दुर्घटना में आपकी ऑखें चली गई।

सर्वप्रथम उन्होंने मिराज रियासत के राजा साहब के आरम्भ में पं0 बालकृष्णबुवा इचलकरंजीकर से संगीत अभ्यास प्रारम्भ किया।

सन् 1896 ई0 में आप भारत भ्रमण हेतु निकल पड़े। उस समय भ्रमण में इन्होंने पाया कि संगीतज्ञों को समाज में वो सम्मान प्राप्त नहीं है जैसा वह होना चाहिये। इस हेतु इन्होंने संगीत को उन्नत करने के लिये बहुत प्रयास किये।

उन्होंने अपनी वाणी की सुमधुरता से भारत के कई शहरों को मंत्र मुग्ध किया। 5 मई 1904 में लाहौर गन्धर्व महाविद्यालय की स्थापना की।

संगीत का प्रचार प्रसार करने हेतु इन्होंने प्रचलित गीतों से भद्दे शब्दों को निकालकर भक्ति रस में रचनाएं की।

पं0 जी ने महिला शिक्षा को भी अग्रेषित किया। महिलाओं को समान रूप से शिक्षा देने के लिये बढ़ावा दिया और निःशुल्क संगीत शिक्षा देने का प्रयास किया।

1908 में पं0 लाहौर छोड़कर मुम्बई आ गये। वहॉ दूसरे गांधर्व संगीत विद्यालय की स्थापना की जिसे इनके पटुशिष्य पं0 औंकार नाथ ठाकुर ने संचालित किया।

पं0 ने संगीत सम्बन्धी 50 पुस्तकें लिखी जिनमें राज प्रवेश की 20 पुस्तक उल्लेखनिय हैं। बालबोध, संगीत शिक्षक, राष्ट्रीयगीत, टप्पा गायन, महिलासंगीत, स्वल्पाताम गायन, संगीत बाल प्रकाश, भजनामृत लहरी, भक्तप्रेम लहरी प्रमुख हैं।

पं0 जी ने भी अपनी सब रचनाओं को अपनी नई स्वरलिपि निर्मित कर लिपिबद्ध किया। इन्होंने बड़े उस्तादों की बंदिशों को अपनी स्वरलिपि में आबद्ध किया।

पं0 जी ने 1905 में जन साधारण में संगीत के प्रचार प्रसार के लिये '' संगीत सारामृत प्रवाह '' नामक मासिक पत्रिका निकाली।

वे संगीतोद्धारक के साथ–साथ उच्च कोटि के संगीत कलाकार थे। उनका गायन रस भाव से परिपूर्ण था। उन्होंने अपनी कला में राष्ट्रीय चेतना व भक्ति भावना से ओत–प्रोत रचनाओं को समन्वित किया। किसी इतिहासकार ने उनके सम्बन्ध में अपने विचार इस तरह रखें '' विष्णु दिगम्बर जी का सबसे बड़ा कार्य, जो उन्होंने किया वह भारतीय संगीत को अश्लीलता के दलदल से निकाल कर भक्ति व संगीत की ओर प्रवाहित किया। उनका यह कार्य भारतीय संगीत के इतिहास में चिरस्मरणीय हैं। ''

सन् 1930 में आपको पक्षाघात हुआ। (उनके पुत्र डी0 वी0 पलुस्कर अच्छे गायक माने जाते थे) किन्तु 55 वर्ष की अवस्था में ही उनका देहान्त हो गया।

69 वर्ष की आयु में सम्पूर्ण जीवन संगीत को समर्पित कर 21 अगस्त 1931 में मोक्ष–गमन की राह पर चल दिये। किन्तु संगीत जगत में इन्हें अपने महान कृत्यों व विद्वत्ता के कारण अमरत्व प्राप्त हो गया।

आज स्वतन्त्र भारत में संगीत के प्रचार प्रसार का प्रमुख श्रेय पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी को है।

पं0 जी ने वाद्यवृन्द के विकास में भी योगदान दिया इन्होंने अपना वाद्यवृन्द तैयार किया। इनके साथ वंशी, दिलरूबा, तबला, वॉयलिन, मृदंग, हारमोनियम, जलतरंग आदि वादक साथ रहते थे।

नासिक में आपने राम नाम आश्रम की स्थापना की। सारे देश में घूम–घूम कर आपने अपनी मधुर वाणी से राम नाम संकीर्तन का गान किया और रामधुन का प्रचार प्रसार किया।

सन् 1915 में कांग्रेस के प्रत्येक अधिवेशन में वंदेमातरम् तथा राष्ट्रीय गान के लिये आमंत्रित किया गया। इन्होंने कुछ निम्न लिखित राष्ट्रीय गीतों की धुनें तैयार की जिसके कारण बहुत ख्याति पाई।'

1. रघुपति राघव राजा राम'	भजन
2. भारत देश हमारा'	देशभक्ति गीतों
3. घर की फूट बुरी	देशभक्ति गीतों

4. पानी की कुछ कमी नहीं ' देशभक्ति गीतों

5. पगड़ी संभल ओ जट्टा ' देशभक्ति गीतों

आपने सैकड़ों शिष्य तैयार किये जिनमें पं0 औंकार नाथ ठाकुर, दी. आर देवधर, पं0 वामनराव पांडेय, पं0 नारायण व्यास प्रमुख हैं।

पं0 औंकार नाथ ठाकुर :–

सम्पूर्ण विश्व में भारतीय शास्त्रीय संगीत के आलोक को प्रसारित करने वाले संगीत मार्तण्ड व पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के प्रमुख शिष्यों में पं0 औंकार नाथ ठाकुर का स्थान विशेष है।

पं0 औंकार नाथ ठाकुर का जन्म 24 जून 1897 में बड़ौदा के 'जहाज' नामक गांव में हुआ। आपके पिता श्री " गौरीशंकर ठाकुर ' तथा माता का नाम ' झबरे बा ' था। श्री गौरीशंकर ठाकुर शिव के अनन्य अपासक थे अतः उनका नाम औंकार ' रखा गया।

आपका बाल्यकाल अत्यन्त विपन्न अवस्था में व्यतीत हुआ। बचपन में ही पिता के अस्वस्थ व असक्षम रहने की स्थिति में इन्हें जीविकोपार्जन के लिये अध्ययन को छोड़ना पड़ा किन्तु उन्हें संगीत से अत्यन्त लगाव था। वे ईश्वर प्रदत मधुर वाणी को संगीत में सरोबार करने की लालसा रखते थे तथा कठिन परिस्थितियों में भी संगीत सुनने व सीखने को तत्पर रहते थें।

एक बार भड़ौच के सेठ रापुर मंचरेजी डूंगाजी ने इनकी वाणी सुनी तो हतप्रभ रह गये उन्होंने पंड़ित जी को आर्थिक सहायता दी और पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी के पास संगीत सीखने भेजा। वे पं0 पलुस्कर जी के पास रहकर संगीत साधना में तल्लीन हो गये थे।

1917 में आप लाहौर के गांधर्व विद्यालय में प्राचार्य पद पर नियुक्त किये गये।

कलकत्ता संस्कृत विद्यालय ने आपके गुणों का सम्मान करने के लिये ' संगीत मार्तण्ड़ ' की उपाधि प्रदान की तथा सन् 1930 में नेपाल नरेश ने आपकों संगीत महामहोपाध्याय की उपाधि से विभूषित किया।

पं0 जी ने नेपाल के अतिरिक्त इटली, जर्मनी, इग्लैण्ड, बेलजियम, स्विट्जरलेण्ड़ आदि देशों में भी यात्रा कर भारतीय संगीत के प्रचार प्रसार का कार्य किया। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति चल रहे असहयोग आन्दोलन में भी सक्रिय भागीदारी का निर्वाह किया।

सन् 1943 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा ' संगीत सम्राट् ' की उपाधि मिली।

ये सन् 1950 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी आ गये।

सन् 1952 में भारत सरकार द्वारा इन्हे अफगानिस्तान भेजे गये जहाँ भारतीय सांस्कृतिक मण्डल ' का प्रतिनिधित्व किया।

सन् 1954 में प्रमुख पुस्तक ' संगीतांञ्जली ' का प्रकाशन हुआ तथा 1955 में राष्ट्रपति द्वारा ' पदम्श्री ' की उपाधि प्राप्त हुई। सन् 1963 में आपकों काशी विश्वविद्यालय से डी. लिट. की मानद् उपाधि प्राप्त हुई।

आपकी वाणी में इतनी सम्मोहन शक्ति थी कि नीरस से नीरस व्यक्ति भी आत्म विभोर हो उठता था। आपने अपने गायन से कई चमत्कृत प्रदर्शन भी किये।

पं0 विष्णु नारायण भातखण्ड़े :–

आधुनिक युग में संगीत के प्रकाण्ड पंडित व विद्वान् पं0 भातखण्ड़े जी को ऐसे अनुपम कार्य के लिये जाना जाता हैं जिनसे संगीत विद्यार्थियों को ग्रन्थों के गूढ सागर से अपनी सुलभ भाषा से बहुमूल्य रत्न प्राप्त हुऐ। जिन्होंने सर्व साधारण को वे चक्षु दिये जिनसे ग्रन्थों व संगीत के प्रायोगिक पक्ष का अध्ययन सुलभ हुआ।

पं0 विष्णु नारायण भातखण्ड़े का जन्म 10 अगस्त 1860 को मुम्बई प्रान्त के बालकेश्वर नामक स्थान पर कृष्ण जन्माष्टमी के दिन हुआ। आपकों संगीत की प्रथम प्रेरणा अपनी माता से प्राप्त हुई। वे मधुर वाणी में संतों की वाणी गाया करतीं थी। उनके पिताजी कॉमन वाद्य बजाया करते थे। किन्तु अल्प आयु में ही इनके पिता का देहान्त हो गया।

माता के गायन का अनुसरण करते हुए वह गायन में प्रवीण हो गयें। सेठ वल्लभदास गुरु राव से इन्होंने सितार तथा जयपुर के मोहम्मद अली खॉ से इन्होंने गायन सीखा।

श्री विलायत हुसैन से व अली हुसैन खाँ से 1882 में आपने सितार व गायन की शिक्षा ली। 1890 में वकालत समाप्त करने के बाद संगीत में इनकी रुचि अत्यन्त बढ़ गयी और वे संगीत को पूर्णरूपेण आत्मसात् करने के लिये भारत भ्रमण के लिये निकल गये।

भातखण्डेजी ने भ्रमण के दौरान कई संगीतज्ञों से अपनी गायन विद्या को लाभाविन्त किया तथा संगीत के गूढ रहस्यों व दुर्लभ संगीत की बंदिशों का संग्रह किया। विभिन्न राज्यों, नगरों व कलाकारों को संगीत के प्राचीन ग्रंथों और रचनाओं पर शोध कार्य किया और उसके फलस्वरूप ''अभिन्न राग मंजिरी'', श्री मल्लक्षय संगीतम् क्रमिक 'पुस्तक मलिका' (6 भाग), 'संगीत शास्त्र' (4 भाग) 'मध्य कालीन संगीत पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन' तथा 'भारतीय संगीत का इतिहास' नामक अनेक ग्रन्थों की रचना की।

प्राचीन ग्रन्थों का लगभग अनुसरण करते हुए वे सिद्वान्तों को अपनाते हुए इन्होंने संगीत के मूल तत्त्वों की विवेचना अपने ग्रन्थों में की हैं। श्रुति विषयक अवधारणा में इन्होंने भरत की श्रुतियों की स्वर स्थापना प्रारम्भिक श्रुति पर ना मानकर अंतिम श्रुति पर मानी हैं।

इन्होंने रागों का वर्गीकरण थाट पद्धति पर कर नये मत का निर्माण किया। 10 थाटों की स्वरावलियों से 200 रागों को वर्गीकृत करने का कार्य भी आपकी अपनी मौलिक कृति है। स्वर लिपि निर्माण कर उनमें प्राचीन बंदिशों को नव रूप प्रदान कर संग्रह प्रकाशन करवाने का जो महान कार्य आपने किया उसके लिये संगीत शिक्षा जगत आपका सदैव ऋणी रहेगा।

दुरुहतर दुर्लभ रचनायें जो हमारे संगीत समाज में लुप्त प्रायः हो चली थी
उन्हें ढूंढ़ कर लाने व उन्हें सुलभ रूप में अपनी स्वरलिपि में सजों कर समाज के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये आपने क्रमिक पुस्तक मलिका का निर्माण 6 भागों में किया।

इनके अतिरिक्त संगीत संबंधी सभी मूल अवधाराणाओं को निम्न पुस्तकों के रूप में सुलभ कर प्रकाशित करवाया।

1. ग्रन्थ संगीतम्
2. ताल मंजरी
3. संगीत दर्शन

आपने व्यंकट मरवी के 72 थाटों में से 10 थाटों को चयनित कर नये नामों से प्रतिपादित किया।

1. मेच कल्याणी	यमन
2. धीर शंकरामरण	बिलावल
3. हरि काम्भौजी	खमाज
4. माया मालव गौड़	भैरव
5. कामवर्धनी	पूर्वी
6. गमन प्रिया	मारवा
7. खरहर प्रिया	काफी
8. नटभैरवी	आसावरी

9. हनुमत् तोड़ी — भैरवी

10. शिवपन्तुवराली — तोड़ी

पं0 भातखण्ड़े ने उत्तर भारतीय व दक्षिण भारतीय पद्धतियों के भी समन्वय करने का राष्ट्रीय कार्य किया।

इस प्रकार भातखण्ड़े जी ने जीवन पर्यन्त अपने प्रयत्नों से संगीत जगत की सेवा की और 19 सितम्बर 1936 को उनकी देहलीला समाप्त हो गयीं। किन्तु आज भी उनका नाम स्वर्णाक्षरों में संगीत इतिहास में अंकित है। उनके अथक प्रयासों से परिणास्वरूप ही हम क्लिष्ट शास्त्रों से संगीत को देख व समझ पाने में समर्थ हो सके हैं। संगीत सम्मेलनों का प्रारम्भ कर भातखण्ड़े जी ने कई शहरों में बडौदा, दिल्ली, बनारस और लखनऊ में संगीत का प्रचार प्रसार किया। रेड़ियों संगीत सम्मेलन को भी प्रचार प्रसारित करने का श्रेय पं0 भातखण्ड़े जी को ही हैं इन्होने लखनऊ मे मौरिस संगीत कॉलेज की स्थापना भी की हैं।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

नाद – ध्वनि अथवा आवाज।

अनाहद नाद – उपासना द्वारा अनुभव नाद

आहत नाद – घर्षण से उत्पन्न होकर सुनाई देने वाली ध्वनि।

श्रुति – मनुष्य के कानों द्वारा सुनाई देने वाली सूक्ष्म ध्वनि, स्वर का प्रारम्भिक बिन्दु।

स्वर – कर्ण प्रिय नाद रंजक ध्वनि, श्रुति का स्थिर रूप ।

ग्राम – निश्चित व्यवस्थानुसार स्थापित स्वरों का विशिष्ट समूह ।

सप्तक – उच्च से उच्चतर क्रमानुसार स्थापित सात स्वरों का समूह अथवा स्थान।

राग – शास्त्रोक्त लक्षणों से युक्त स्वर समूह रंजक स्वर समूह।

थाट – क्रमानुसार सात स्वरों का ढांचा या समूह

तानपुरा – आधार स्वरों की गूंज में निरन्तरता बनाये रखने वाला तत् वाद्य, तंबूरा।

अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 निम्न में से कौन रीव नरेश राजा रामचन्द्र के दरबारी गायक थें?

(1) तानसेंन (2) पं0 ऊॅकारनाथ ठाकुर

(3) पं0 विष्णु नारायण भातखण्ड़े (4) पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर

प्रश्न 2 स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रभात पर आकाशवाणी से वंदे मातरम् गाने का सौभाग्य सर्वप्रथम किसे प्राप्त हुआ ?

(1) पं0 भातखण्ड़े (2) पं0 पलुस्कर

(3) मियां तानसेंन (4) पं0 औंकार नाथ ठाकुर।

विस्तृत प्रश्न–

1. पं. भातखण्डे का संगीत को योगदान पर संक्षिप्त निबन्ध लिखें
2. पं. पलुस्कर द्वारा संगीत शिक्षा के लिये किये गये कार्यों का वर्णन करें।

अध्याय 3

रागों का वर्णन एवं बंदिशें राग यमन

सबही तीवर सुर जहॉ वादी गन्धार सुहाय
अरू संवाद निषाद ते, ईमन राग कहाय।।
– रागचंद्रिका सार

सम्पूर्ण तीव्र स्वरों वाला वह राग जिस राग का वादी स्वर गंधार व निषाद हैं वह राग यमन हैं।

इस राग का थाट कल्याण है। कल्याण थाट को मुख्य यमन के नाम से ही जाना जाता है। शुद्ध स्वरों के अलंकारों के पश्चात् विद्यार्थियों को सर्व प्रथम कल्याण थाट के यमन राग की स्वरावली का सर्व प्रथम भान कराया जाता है।

कल्याण थाट का मुख्य राग होने के कारण यदि इसे कल्याण राग कहें तो अत्योचित होगा। इसका वादी स्वर गंधार एवम् संवादी निषाद हैं। सम्पूर्ण जाति का यह राग रात्रि के प्रथम प्रहर में अत्यन्त आकर्षक बन पड़ता है। प्रारम्भिक षड़ज का लंघन कर इसका स्वरूप नि, रे, ग से प्रारम्भ होता हैं। गंधार वादी होने के कारण यह पूर्वांग वादी राग हैं। कभी–कभी इस राग में शुद्ध मध्यम का प्रयोग करके संगीतज्ञों ने यमन कल्याण का रूप भी प्रदान किया है। पूर्वांग में अक्सर तार षड़ज गाते समय पंचम का लंघन करते हुए म, ध, नि, सां भी जाने का चलन हैं। किन्तु पंचम राग का मुख्य न्यास स्वर भी हैं।

आरोह– ऩि, रे, ग, ,म, ध, नि, सां।
अवरोह– सां, नि, ध, प, म, ग, रे, सा।
पकड़– ऩिरेग, रेसा, पमगरेसा।

सरगम गीत (स्थायी) (त्रिताल)

नि ध– प	मे प ग मे	प – – –	प मे ग रे
सा रे ग रे	ग मे प ध	प मे ग रे	ग रे सा–
ऩि रे ग मे	प ध नि सां	रे सां नि ध	प मे ग मे
0	3	ग	2

अंतरा

ग ग प ध	प सां–सा	नि रें गं रें	सां नि ध प
गं रें सां नि	ध प नि ध	प मे ग रें	ग रे सा–
0	3	ग	2

लक्षण गीत (एक ताल)
(स्थायी)

प	ध	ध	मे		
सां सां	नि नि	म प	प प	मे ग	– ग
स ब	गु नि	ज न	इ म	न गा	ऽ त
ग	0	2	0	3	4
ग –	ग रे	ग प	रे ग	रे नि़	रे सा
तीऽ	व र	सु र	र	त सा	ऽ थ
ग	0	2	0	3	4
सा सा	रे रे	ग ग	मे मे	प प	ध ध
नि नि	रें रें	गं रें	सां रें	सां नि	ध प
ग	0	2	0	3	4

अन्तरा

मे			प.		
प ग	न –̇	ध प	सीं –	सां सां	– सां
सु र	वा ऽ	दि गं	धा ऽ	र सा	ऽ ध
	0	2	0	3	4
सां सां	रें	गं रें	सां सां	नि नि	ध प
स म	वा ऽ	दी ऽ	क र	नि षा	ऽ द
	0	2	0	3	4
प ग	ग प	प प	नि नि	ध प	ध प
रा ऽ	त स	म य	प्र थ	म प्र	ह र
	0	2	0	3	4
	ध			ग	
सां सां	नि नि	मे प	प ग	प रे	– सा
च तु	र सु	ज न	म न	रि झा	ऽ त
	0	2	0	3	4

छोटा ख्याल (त्रिताल) (मध्य लय)
स्थायी

प गम	नि ध प –	– रे – सा	ग रे ग ग
अ रीऽ	एऽ रीऽ	ऽ आऽ लि	पि या बि न
– – प प	ग म ग प	प ध प प	नि ध प प
ऽ ऽ स खि	क ल ना प	र त मो हे	घरि प ल
रे रे सा सा	नि नि (प) –		
छिन छिन	एऽ रि ऽ		
2	0	3	ग

अंतरा

प प सां–	सां – सां सां	सां (सां) नि ध	नि ध प प
ज ब ते पि	या s प र	दे s स ग	व न की नो
पं गं रें सां	नि ध प प	ध नि ध प	रें रें सां सां
र ति यॉ क	ट त मो री	ता s s रे	गि न गि न
0	3	ग	2

बड़ा ख्याल (एक ताल) (विलम्बित)

स्थायी

नि़ प	निध सारे	सा –	नि़ रे	ग रे	सा (सा)
मे रा	s s म न	बॉ s	s ध	लि नो	रे s
3	4	ग	0	2	0
निनि प(प)	रे मे मे	प प (प)	ग रे	ध़ नि़	सा सा
हॉ s रे	s ई न	जो गी	या के	सा s	s थ
3	4	ग	0	2	0

अंतरा

ग मे	प ध	निनि प(प)	मेग गप	ग रे	सारे सा
स दा	रं ग	क s रs	मs मs	रो s	क्यू ना
नी़ रे	ग मे	नीनी (प)	मेग प	रे नि़	रे सा
इ न	प्राs	नs ना	s s थ	के हा	s थ
3	4	ग	0	2	0

राग बागेश्री

राग वर्णन

तीवर रि ध कोमल ग म नि
मध्यम बादि बखानि
खरज जहाँ संवादि है
बागे सरी लखानि

– राग चंद्रिका सार

गंधार, मध्यम व निषाद की कोमलता लिये हुये यह राग काफी थाट से उत्पन्न है। इसमें इनके अतिरिक्त सभी स्वर शुद्ध लगते है। मध्यरात्रि में इसका गायन समय उपयुक्त है। राग में आरोहात्मक ऋृषभ स्वर वर्ज्य होने के साथ अवरोह पंचम का लंघनत्व कर अल्प प्रयोग किया जाता है अवरोह में ऋृषभ स्वर ''मग रे सा'' आता है।

पंचम के सम्बन्ध में विभिन्न विवाद पाये जाते हैं कुछ विद्वान पंचम वर्ज्य करके बागेश्री गाते है।

इस राग की जाति इस आधार पर ऑड़व – सम्पूर्ण तथा औड़व षाड़व दोनों मानी जाती है। स्वर संगतियों की विशेष मधुरता इस राग की प्रमुख विशेषता लक्षित है।

आरोह – सा नि़ धं नि़ सा म ग म ध नि सां ।

अवरोह – सां, नि ध, म गे म ग रे सा ।

पकड़ – सा, नि़ ध़ सा म ध नि धं, म, ग रे सा ।

सरगम गीत (एकताल स्थायी)

म ग	रे सा	नि़ सा	ध़ नि	सा–	म ग
म ध	नि सा	नि् ध	म ध	नि ध	म ग
म ग	म ध	नि सां	– ध	नि सां	रें सां
सां रें	सां नि	ध म	ध म	ग ग	रे सा
ग	0	2	0	3	4

अन्तरा

म ग	म ध	नि़ सां	– ध़	नि सां	रें सां
नि सां	मं गं	रें सां	नि् सा	रें सां	नि ध
म ध	सां नि	ध म	ध म	ग ग	रें सां
सां रें	सां नि	ध नि	ध म	ग ग	रे सा
ग	0	2	0	3	4

लक्षण गीत –झपताल (मध्यलय) स्थायी

सा		ध	
म ग	रे सा –	नि ध	सा सा –
गा ऽ	वो बा ऽ	गे ऽ	स री ऽ
ग	2	0	3
नि	सा		म म
सा सा	म म म	म मं	प ग –
मृ दु	ल ग त	सु र	ग नि ऽ
ग	2	0	3
ग			
म ग	म नि ध	सां सां	रें सां सां
ख र	ह ऽ र	प्रि य	ठा ऽ ठ
ग	2	0	3
	नि		
सां –	ध नि ध	मं म	प ग –
ती ऽ	व र क	र त	ध रि ऽ
ग	2	0	3

अन्तरा

म	ध		
ग म	नि ध नि	सां –	सां – सां
म ऽ	ध्य म क	रे ऽ	जा ऽ न
×	2	0	3
सां		सां	
नि सां	रें – सां	नि सां	नि – ध
स म	वा ऽ दि	सा ऽ	मा ऽ न
×	2	0	3
नि	प	म	
ध –	नि नि ध	ग –	रे – सा
पं –	च म क	रे –	अ ऽ ल्प
×	2	0	3
रे सा	नि ध नि	सा –	म म ग
म ध	नि ध म	प ग	रे रे सा
×	2	0	3

बड़ा खयाल एकताल विलम्बित

स्थायी

ध			प	ध	ध
सां नि	ध नि	ध ध	सा –	नि नि	ध ध म ग
मो ऽ	ऽ ऽ	हे म	ना ऽ	ऽ व	न आ ऽ ऽ
3	4		×	0	2 0
ग		सा		सा	
म ग	रे सा	रे सा	नि ध	सा सा	सा –
ऽ ये	हो ऽ	सा ग	री ऽ	रं ति	यों ऽ
3	4	×	0	2	0
नि सा	म ग	म ध	नि ध	म ग	मग रेसा
कि न	सो ऽ	त न	घ र	जी ऽ	ऽऽ ऽगे
3	4	×	0	2	0

अन्तरा

म	ध सा			मं	सां
ग म	नि ध – नि	सां –	सां नि सां	रें ग	रे सां
ते ऽ	तो ऽ ऽ रं	गी ऽ	ले ऽऽ	छ वि	दि ख
3	4	×	0	2	0
सां		ध	नि		
निसां(सा)	नि ध	ग म	ध नि	सां मंगं	रें सा
ला ऽ ऽ	ये ऽ	ला ऽ	ल न	के ऽ ऽ	म न
3	4	×	0	2	0
सा		ध नि	प		ग
रे सा	नि ध	म ध	नि ध	म ग	मग रे सा
ल ल	दा ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ मे ड
3	4	×	0	2	0

छोटा खयाल त्रिताल

स्थायी

ध		म	
सां – नि नि	ध म प ध	ग ग रे सा	रे रे सा –
को ऽ न क	र त तो रि	बि न ति पि	य र वा ड
0	3	×	2
– नि – ध	नि सा – सा	म ध पध नि	ध ग – रे सा
ऽ मा ऽ नो	न मा ऽ नो	ह म री ऽ ऽ	ऽ बा ऽ त ऽ
0	3	×	2

अन्तरा

म नि		सां	सां
ग म ध नि	सां – सां सां	नि सां रें सां	नि सां नि ध
ज ब से ग	ये ऽ मो रि	सु ध हू ना	ली ऽ नि ऽ
0	3	×	2
– ध – ध	नि – ध ध	ग – – म	ग रे – सा
ऽचा ऽ हे	सों ऽ त न	के ऽ ऽ घ	र जा ऽ त
0	3	×	2
ध			
– सां नि नि	ध म प ध		
ऽ कों न क	र त तो रि		

राग भूपाली

आरोही अवरोहि में सुर म नि कीन्हें त्याग ।
ध–ग संवादि–वादि तें कहि भूपाली राग।

– राग चंद्रिका सार

राग भूपाली कल्याण थाट से जन्य राग है। इसमें सभी स्वर शुभ होते हुये भी पूर्वांग प्रधान होने के कारण इसे कल्याण थाट में रखा गया। इसके कल्याण थाट में न होकर विलावल थाट में माने जाने के मत पाये जाते है।

सभी स्वर शुभ लगते हैं। इसका वादी स्वर गंधार एवं संवादी स्वर धैवत है। इसके विपरीत इन्हीं स्वर संयोजनां में इसका वादी स्वर धैवत संवादी स्वर गंधार कर उत्तरांग प्रधान कर दिया जाये तो राग देशकार बन जायेगा। यह ऑड़व – ऑड़व जाति का सरल व मधुर राग है इसके समप्राकृतिक राग भूप कल्याण शुभ कल्याण देशकार है।

इसके गायन का समय मध्य रात्रि माना गया है।

आरोह – सा रे ग प, ध, सां ।

अवरोह – सां, ध प, ग, रे, सा ।

पकड़ – ग रे सा ध, सा रेग, पग, ध पग, रे,, सा।

सरगम गीत त्रिताल

स्थायी

सां सां ध प	ग रे सा रे	ग– पग	ध प ग–
ग प ध सां	रें सां ध प	सां प ध प	ग रें सा.
0	3	×	2

अंतरा

ग ग प ध	प सां – सां	ध धं सां रें	गं रें सां ध
गं गं रें सां	रें रें सां ध	सां सां धं प	ग रे सा –
0	3	×	2

राग भूपाली लक्षण गीत (त्रिताल)

स्थायी

			सा रे
			म नि
ग ग प रे	— सा सा रे	सा धं सा रे	ग ग — —
ब र ज गा	ऽ य रा ऽ	ग नि क र	ज ब ऽ ऽ
0	3	×	2
ग — ग रे	ग प ध सां	ध प ग रे	ग रे सा —
भू ऽ पा ऽ	ली ऽ अं ग	क ह त गु	नी ऽ स ब
0	3	×	2
सा रे सा सां	सा — सांप ध	सां सां ध प	ग रे सा रे
शु ऽ द क	ल्या ऽ णडु दि	लु म न त	ज त म नि
0	3	×	2

अन्तरा

ग			ध
प — ग —	प — सां ध	सां — सां —	सा रे सां —
ग ऽ वा ऽ	दी ऽ अ रू	धा ऽ स म	वा ऽ दी ऽ
0	3	×	2
ध सां सां			ध सां
सां ध ध ध	सां सां सां —	सां रें गं रें	सां रें सां ध
दे ऽ श का	ऽ र में ऽ	अं ऽ श सु	धै ऽ व त
0	3	×	2
	ध	प	
प ग प ध	सां — सां सां	ध प ग प	ग रे सा —
रा ऽ ग दि	भा ऽ स स	ज त को ऽ	म ल ध र
0	3	×	2
ध	सा	ध	
सा रे सा सा	— सां सां प ध	सा — ध प	ग रे सा रे
शा ऽ स्त्र भ	ऽ द सऽ म	झा ऽ य च तु र म	नि
0	3	×	2

छोटा ख्याल (त्रिताल)

ध		सा	प
सां सां ध प	ग रे सा सा	प ग प प	प ध ध —
इ त नो जो	ब न प र	मा ऽ न न	क रि ये ऽ
0	3	×	2
प प प	प सां		
ग ग ग रे	ग प ध सां	सां प ध सां सां	सां सां धप गरे सां—
ड रि ये ऽ	प्र भु सों ऽ	आऽ ऽ ऽऽ ज	आऽ ऽऽ ऽऽ लिऽ
0	3	×	2

अन्तरा

प		ध	
ग – ग ग	प – सां ध	सां सां सां –	सां रे सां –
जोऽ को इ	आ ऽ वे ऽ	अ प ने ऽ	ढिं ग क ऽ
0	3	×	2
सां सां		ध	ध
ध – ध –	सां सां रें रें	सां रें गं रे	सां (सां) ध प
ता ऽ सौं ऽ	ग र ब न	की ऽ ऽ जि	ये ऽ ऽ ऽ
0	3	×	2
प		सां	
प ग रे गप ध	सां सा˙	प ध सां सा˙	सां सां धप गरे सा–
स दा ऽ रें	ऽ ग य ह	री ऽ ऽ त	मा ऽ ऽऽ ऽऽ ने ऽ

बड़ा ख्याल त्रिताल (विलंबित)

स्थायी

ध	सा	ग प	
ग रे सा रे ध सासा	प रे ग ग	पग प सां ध सां	ध प ग रे
ज ब हीऽऽ सब	नी ऽ ऽ र	पऽ ऽ ऽऽ ऽ	त ऽ ऽ ऽ
3	×	2	0
ध सा	ध सा	रे	
सां ध सा –	सा रे रे –	प – रे ग	– रे सा सासारेग
नी रा ऽ ऽ	ऽ ऽ स ऽ	भ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ये ऽऽऽऽ
3	×	2	0

अन्तरा

प ध		ध	धं धं
ग प सां ध सां	सां सां (सां) –	सां रें गरें सां	सां सां (सां) ध प गरे
गु रू पऽ द	क म ल ऽ	बं ऽ ऽ ऽ दे	र घुऽ ऽप तिऽ
3	×	2	0
प	ग	ग	
ग प सांध सांसां	रें गं रें सां	प सांध रे सां	(प) ग रेंग सारे सारेग
चा ऽ पऽ ऽस	मी ऽ ऽ प	ग ऽऽ ऽये	ऽ ऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽऽ
3	×	2	0

ध्रुवपद राग भूपाली (चौताल)

ग –	रे ग	– प	ग –	रे सा	रे सा
तूऽ	हि सू	ऽ र्य	तू ऽ	हिचं	ऽ द्र
×	0	2	0	3	4
सा –	ध सा	ग रे	सा रे	सा ध़	ध़ प़
तू ऽ	हि प	व न	तू ऽ	हि अ	गि न
×	0	2	0	3	4
सा –	रे ग	प ध	सां –	ध सां	– सां
तू ऽ	हि आ	ऽ प	तू ऽ	अ का	ऽ स
×	0	2	0	3	4
सां गं	रें रें	सां ध	सां ध	प ग	रे सा
तू ऽ	हि ध	र नि	य ज	ऽ मा	ऽ न
×	0	2	0	3	4
प –	ग ग	– प			
तू ऽ	हि सू	ऽ र्य			
×	0	2			

अंतरा

ग प		ध	ध़		
प ग	– प	सां ध	सां –	सां सां	रें सां
भ व	ऽ रू	ऽ द्र	उ ऽ	ग्र स	ऽ र्व
×	0	2	0	3	4
सां			सां	सां	
सां ध	– सां	सां रें	गं रें	रे सां	ध प
प शू	ऽ प	ती ऽ	स स	मा ऽ	ऽ न
×	0	2	0	3	4
सा					
प ग	रे ग	प सांध	सां –	सां सां	रें सां
ई ऽ	ऽ शा	ऽ नऽ	भी ऽ	म स	क ल
×	0	2	0	3	4
गं रे	– सां	प ध	सां ध	प ग	रे सा
ते ऽ	ऽ रे	ऽ हि	अ ऽ	ष्ट ना	ऽ म
×	0	2	0	3	4
ग –	रे ग	– प			
तू ऽ	हि सू	ऽ र्य			
×	0	2			

राग देस

पंचम वादी अरू रिखब संवादी संजोग ।
सोरठ के ही सुरन तें देस कहत हैं लोग ।।

– राग चंद्रिका सार

जैसा कि उपर्युक्त दोहे में परिलक्षित है, सोरठ या सौराष्ट्री राग के स्वरों में पंचम वादी ॠषम संवादी कर मधुर राग देस को निर्मित किया गया।

खमाज थाट से जन्य यह सम्पूर्ण राग लोक प्रिय मधुर राग है। कुछ विद्वान रे वादी प संवादी भी मानते है।

सोरठ राग से अत्यधिक साम्यता व सम प्राकृतिक राग मध्य रात्रि के दूसरे प्रहर में गाया बजाया जाता है।

इस राग में गंधार स्पष्ट रूप से लिया जाता है। इसके आरोह में गंधार व धैवत प्राय : नहीं लिये जाते व ॠषभ वक्र रूप से प्रयोग में आता है।

बहुत मधुर लोक संगीत के समीप राग अपनी पृथक् अभिव्यंजना रखता है।

आरोह – सा, रे मप नि सां ।

अवरोह – सा नि ध प, म ग , रे ग सा।

पकड़ – रे, म प, नि ध प, प ध पम, ग रे ग सा।

सरगम त्रिताल

नि ध प म	ग रे ग सा	रे रे म प	नि नि सां –
रे ग रे सां	नि ध म प	सां नि ध प	म ग रे रे
रे ग रे प	म ग रे सा	सां रे सां नि	ध प म प
2	0	3	×

अंतरा

म – म प	– प नि –	नि सां – सां	मं ग रें सा
रे पं मं ग	सां रे नि सां	नि नि सां रें	सां नि ध प
2	0	3	×

छोटा खयाल त्रिताल

स्थायी

			प
	म	सां	र
प ध प म	ग रे ग सा	रे रे म प	नि नि सां.
मा ऽ प ति	रा ऽ म सु	मिर भव	त र ना ऽ
2	0	3	×
		सां	
– – – –	नि नि नि नि	सां नि सां सां	रे नि ध प
ऽ ऽ ऽ ऽ	ह रि च र	न न चि त	घ र ना र

अंतरा

म म म म	प प नि नि	सां सां सां नि	सां सां सां सां
मु रा रि गु	न न क रि	श्र व न सु	र ति दे खो
×	2	0	3
रें रेंगं रें सा	रे नि सां –	सां सां – नि	ध प प प
प्र मुऽ जी की	अं खि यां ऽ	गं जा ऽ की	त ऽ सौ ऽ
×	2	0	3
नि नि ध प	प – ध म		
च र ना र	मा ऽ व ति		
×	2		

बड़ा खयाल (विलम्बित) त्रिताल

स्थायी

ग व प	सां सां	नि धं	ग
म (म) मरे मप	नि सां निसां रें नि नि	ध प प ध ऽम	म (म) रे –
हो जी ऽऽ म्हारी	दे ऽ ऽ ऽऽ ऽऽग	सुऽ नऽ ऽती	जो ऽ ऽ ऽ
3	× 2	0	
म	प प	ग न	
रे रे प –	म प मपध म रे	मम गरे ग – सा नि़	सा – सा –
हो जी ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽऽऽ ऽ रे	ऽऽऽऽ ऽ ऽ म्हारा	रा ऽ ऽ ज
3	×	2	0

अन्तरा

प सां		प सां	
म मप नि नि	सां सां सां सां	म प नि सां	निसां निसांरे रें –
क बऽ की ऽमै	अ बी ठा डी	अ प ने मं	द द रऽऽ वा ऽ
3	×	2	0
सां			
नि नि सां ऽनि	सां निसां सां –	नि सां सां –	
अ र ज ऽक	रे ऽऽ शॉ ऽ	वा ऽ लो ऽ	
3	×	2	

नि सां रें ग रें सा नि धं निसां नि ध पधप–
रा ऽ ऽऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽऽ ऽ ऽ ऽऽजऽ
0

38

राग अल्हैया बिलाबल

मृदु मध्यम तीवन सबहि सुर सोहन जेहि मौ हि।
ध ग वादी संवांदि ह कहत बिलावल ता हि ।।

बिलावल की प्रमुख प्रकार राग अल्हैया बिलावल है किन्तु आधुनिक समय में अल्हैया बिलावल का प्रचार इतना अधिक है कि अल्हैया बिलावल को बिलावल का पयार्य माना जाता है।

सम्पूर्ण शुद्ध स्वरों के अलंकार में कदाचित् कोमल निषाद का अल्प रूप में लगना इसे बिलावल से पृथक् कर देता है। राग के वादी धैवत व गंधार के संवादित्व से युक्त है उत्तरांग वादी यह राग दिन के प्रथम प्रहर में गायन वादन के प्रचार में है।

इस राग के चलन में आरोह में मध्यम वर्ज्य है तथा अवरोह में सम्पूर्ण स्वर लिये जाते है। कोमल निषाद का प्रयोग दों धॅवतों के मध्य में अर्थात् ध नि ध प इसी स्वरावली में किया जाता है।

जैसे अवरोह में गांधार को वक्र रूप से लगाया जाता है मग मरे, राग की प्रकृति चंचल ही इसीलिये श्रृंगार रस का राग कहा जाता है।

आरोह – सा, रे, गरे, गप ध, नि ध, नि सां।

अवरोह – सा नि ध प ध नि धप मग, मरे सा।

पकड़ – ग रे, गप, ध, नि सां।

सरगम गीत (झपताल)

स्थायी

ग प	नि ध नि	सां –	सां रें सा
सां सां	रें सां नि	ध प	ध मं ग
ग म	प म ग	म रे	सा रे सा
ध ध	रे सां नि	ध प	ध म ग
×	2	0	3

अन्तरा

प प	नि ध नि	सां –	सां रे सां –
सां रें	गं मं पं	मं गं	मं रे सां
गं रें	सां रें सां	ध प	सां ध प
ग म	रे ग म	प ग	म रे सा
×	2	0	3

लक्षण गीत त्रिताल

स्थायी

			नि सां सां त ब
नि ग रे ध प म ग क ह त बि	ग ध प – नि नि ला ऽ व ल	सां – सां सां भे ऽ द च	ध नि नि ध प तु र ज ब
धनि सारें सां सांनि मेऽ ऽऽ ल ऽमि	ध प म ग ला ऽ व त	ग रे ग म शु ऽद्ध सु	ग रे सा – र न को ऽ
सा म ग प प्रा ऽ त स	ध प – नि नि मे ऽ नि त	रें सां गं सा सां प्र थ म प्र	धि नि नि सां सां ह र, त ब
0	3	×	2

अन्तरा

ध प – नि नि धै ऽ ब त	सां – सां – बा ऽ दी ऽ	रें निसं गं गं मं गाऽ सं ऽ ऽ	गं रे – सां – वा ऽ दी ऽ
मं ग मं पं ग अ ऽ ष्ट भे	मं रें सां सां ऽ द स ब	धनि सारें सां सांनि गाऽ ऽ ऽ य मऽ	ध नि सां सां धु र त ब
0	3	×	2

छोटा खयाल त्रिताल

प ध ग प नि नि तू ऽ हि आ	सां – सां सां धा ऽ र स	नि सां रें सां नि क ल त्रि भु	ध प मग मरे व न कोऽ ऽऽ
म ग म प मग पा ऽ ल कऽ	म रे सा – स च रा ऽ	नि ध नि सां नि च र भू ऽ	ध प मग मरे त न कोऽ ऽऽ
3	×	2	0

अन्तरा

प – नि नि तू ऽ ही ऽ	सां – सां – वि ऽ ष्णु ऽ	नि रें सां गं गं मं तू ऽ ना ऽ	गं रें सां सां रा ऽ य ण
नि. सां – रं रें का ऽ र न	नि सां – ध प तू ऽ प र	नि ध नि सां सांनि ब्र ऽ ह्म जऽ	ध प मग मरे ग त कोऽ ऽऽ
3	×	2	0

राग यमन (स्वर विस्तार)

नि् रे सा, नि रेग रे सा । धनि रे सा ध़, नि़, रेग, रेसा । नि रेग रेग रेग भंग रेग मे प गमेप, मेग रेग मे गरे निरेसा। धनि रेग मे प मे ध प ग मे ध प मेग, में ध नि ध प, नि ध मे ध प, पेरेसा नि़रेग में धनि, ध ानि, मेध नि़ गमे ध नि, धप, म ध नि सां, सांनि ध प मेग म ध प प मे ग, मेग रे, नि रेग मे ध नि सां । नि रें सां निरेंगं रे सां सांनि धप मेग रेग रे, निरेग रे नि रे सा ।

राग बागेश्री

सा़ ध़ नि़ सा, निं ध़ म ध नि ध़ नि़ सा म, ग़ म ग रे सा ध नि सा म ग, ग म ध, म. ग म ग ध म़ ग म ध नि ध म, म प ध ग, मे ग रे सा़ धं नि सा ग म, ग म ध नि सां – (सां) नि ध नि ध, म, ग, म ध ग रे सा ग म म प ध ग म ग रे सा । ध़ मि सा ग म़ मं ग रे सा

राग भूपाली (स्वर विस्तार)

सा़ सारे सा, सा ध़प़, ध सा सा रे ध़ सा़ ध़सा रेग, रेगरें, रेग रेप, गरेसा, सारेग प, ध़ सा रेग, गप, गपध ाप, ध प ग रे, गप, गपधप, ध सा/ सां ध प गरे, ग प ध प, गरेसा, सा रे गप , घ सां घ सां रें, सां रें गं रें सां ध प, सां ध प ग प ध प, गरे सा धं सा रेग रे सा ।

नोट– विविध रागों की बंदिशें स्वयंपाठी छात्रों की सुविधा हेतु प्रयोज्य की गई है। संगीत अध्यापक अपनी सुविधानुसार की बंदिशें सिखा सकते हैं।

अध्याय 4

लय

संगीत में लय का स्थान

लय : संगीत में प्रत्येक क्रिया के बाद के समान विश्रान्ति को लय कहते हैं। सामान्य भाषा में इसे गति भी कहा जा सकता है। आचार्य भरत ने लय के सन्दर्भ में लिखा हैं।

ततः कला कालकृतो लय कृत्यभिसंज्ञितः।
त्रयो लायस्तु विज्ञेया द्रुत मध्यविलम्बिताः।।

(नाट्यशास्त्र : 31/5)

उपरोक्त श्लोक की टीका करते हुए अभिनव गुप्त ने कलाओं के मध्य स्थित कला की विश्रान्ति युक्त क्रिया को लय कहा है। अर्थात् बिना रुके काल की क्रिया नहीं की जा सकती।

"आचार्य भरत ने लय के सम्बन्ध में ताल विधि का लक्षण देते हुए कहा हैं कि– "यदन्तरं कालपरिणामं तत् तात्यतेऊनाधिकमावं गम्यते येषु गुरुलधुषु तेषु ते पद (त) संज्ञाः पादे : (ते) सव्यवहार उभयकरनिपतनस्वभावात् संज्ञा अत इतिद्योत्यते (न्ते)[1]

अर्थात् विश्रान्ति से जिस प्रकार छन्द के अक्षरों में समान काल प्रयुक्त होने से लय बनती हैं उसी प्रकार के काल के अक्षर, पद तथा सम्पूर्ण वाद्य में समान काल की विश्रान्ति से लय बनती हैं।

अभिनव गुप्त ने भी ताल कलाओं के मध्य विश्रान्ति से लय का अर्थ लिया है। और विश्रान्ति घटने या बढ़ने से लय में विविधता आती है और इसी विविधता को तीन प्रकार में बाँटा जा सकता है।

विलम्बित, मध्य, द्रुत

1. **विलम्बित लय** – मध्य लय की ठीक दोगुनी विश्रान्ति अर्थात् धीमी लय को विलम्बित लय कहते हैं।

2. **मध्य लय** – विलम्बित लय की दुगुनी तेज लय अथवा द्रुत लय से दुगुनी विश्रान्ति वाली लय को मध्य लय कहते हैं।

विलम्बित लय व द्रुत लय के दो प्रकार और प्रचलित हैं।

1. **अतिविलम्बित लय** – विलम्बित लय की और अधिक विश्रान्ति वाली लय या धीमी लय को अतिविलम्बित लय कहा जाता है।
2. **अति द्रुत** – द्रुत लय की दुगुनी कम विश्रान्ति वाली लय को द्रुत लय से ज्यादा तेज लय को द्रुत लय कहते हैं।

लय का जीवन में उपयोग –

सामान्य जीवन में यदि हम महसूस करें तो पायेंगे कि जन्म से लेकर मरण तक हमारे हर कृत्य में लय विद्यमान है। बच्चा जन्म लेते ही एक लय में ही रोता हैं यदि ना रोए तो चिकित्सक घबरा जाते

---

1. भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र : अभिनवगुप्ताचार्य की टीका अभिनव भारती सहित : भाग – 4, 31/36 पृ0 166, परिमल संस्कृत ग्रन्थमाला संस्करण (प्रधान सम्पादक डा0 रविशंकर नागर)

हैं। और मरते समय राम का उद्घोष भी एक लय में शंख की घण्टों की ध्वनि सभी एक लय बहुलता का प्रमाण हैं। सामान्य भाषा में लय को दो अर्थों में जाना जाता है। एक अर्थ में तो लय को शाब्दिक अर्थ से पहचाना जाता है अर्थात् लीन हो जाना या किसी भाव से एकाकार कर लेना । दूसरे अर्थ में काल मापने के एक मात्र साधन लय ही है लय को गति भी कहा जाता है।

प्राकृतिक रूप में यद्यपि हम दृष्टिपात करें तो पायेंगे चन्द्र, नक्षत्रों, पृथ्वी सभी क्रियाओं की अपनी–अपनी लय निश्चित है। पृथ्वी अपनी एक निर्धारित लय में सूर्य की परिक्रमा कर रही है। जरा भी लय में शिथिलता या तीव्रता विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं का कारण बनती है। एक निश्चित लय के कारण ही समय पर पूर्णिमा, अमावस्या विधिवत रूप से आती रहती हैं। समय–समय पर ऋतुओं का बदलाव, रात, दिन की निश्चित लय से पृथ्वी के घूमने के कारण ही संभव है और इसी लय से पशु पक्षियों का जीवन भी बंधा हुआ है। मुर्गे को एक लय का अहसास है इसलिये वह सुबह को बांग देता हैं वह समझ जाता हैं सुबह हो गयी है पक्षी चहचाने लगते हैं। मनुष्यों को घड़ी की टिक–टिक से जानकारी होती है घड़ी की टिक–टिक में भी एक लय है जरा भी टिक–टिक की लय कम होती हैं हम समझ जाते हैं कि घड़ी खराब हो गयी है। हमारी श्वसन क्रिया, हृदय के धड़कने तथा चलने फिरने, दोड़ने, बोलने सभी में एक लय है। श्वसन क्रिया जरा सी बिगडती है हमें दमा रोग की शिकायत हो जाती है। हृदय के धड़कने की लय अनिश्चित हुई नहीं कि हृदयाधात का डर सताने लगता है। जब हम समान गति से चलते हैं तो हमारी एक लय होती है जब हम दौड़ते तो भी हमारी गति अथवा लय एक सी होती है ऐसा नहीं होता कि हम कुछ देर दौड़ते हों व कुछ देर चलते हो या एक कदम भागकर या एक कदम चल कर अपनी दूरी तय करते हों। बोलते समय यदि किसी व्यक्ति की लय बिगड़ती है तो वह हकले की श्रेणी में आता है। आँखों की दोनों पुतली यदि एक लय या गति में नहीं घूमती तो आँखों में भैंगापन का रोग हो जाता हैं। हमारे शरीर का प्रत्येक अंग एक गति में कार्यरत है। भोजन करते ही पाचन तंत्र अपनी गति से भोजन को पचाने का कार्य करने लगता है जरा भी पचाने की क्रिया की गति रुकती है कि हमारा पाचन तंत्र गड़बड़ा जाता हैं। इसके अतिरिक्त छोटे बच्चे का एक लय से हिलता पालना उसे सुलाने में सहायक होता है। रेखागणित के द्वारा यह तथ्य स्पष्ट होता है कि ध्वनि और लय के व्यवस्थित प्रयोग द्वारा बड़े–बड़े लोहे के पुल, शीशा, दीवार इत्यादि को तोड़कर चूर–चूर किया जा सकता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि लय या गति ईश्वर प्रदत नैसिर्गिक क्रिया है और सच कहे तो इस लय अथवा गति ईश्वरीय अभिव्यक्ति का आधार है।

संक्षिप्त सार ।
लय ही जीवन है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. लय के विविध प्रकार समझाइये
2. लय का संगीत में उपयोग समझाइये

ताल का विवरण

त्रिताल–

त्रिताल को तीनताल भी कहते हैं। इसमें 16 मात्रायें होती हैं। 4.4 मात्रा के 4 विभाग, 3 ताली व एक खाली होती है। पहली ताली 1मात्रा पर , 5 वीं तथा 13 वीं मात्रा पर ताली व 9 वीं मात्रा खाली होती है।

ठेका

1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.	8.
धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा
9.	10.	11.	12.	13.	14.	15.	16.
धो	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
0				3			

दुगुन

धा धि धिं धा	धा धि धि धा	धा तिं तिं ता 2	ता धिं धिं धा
धा धि धिं धा 0	धा धि धि धा	धा तिं तिं ता 3	ता धिं धिं धा

चौगुन

धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता	ता धिं धिं धा
धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता	ता धिं धिं धा
धा धिं धिं धा 0	धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता	ता धिं धिं धा
धा धिं धिं धा 3	धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता	ता धिं धिं धा

दादरा

इस ताल में 6 मात्रा, 2 विभाग , (3–3 मात्रा के) 1 ताली व 1खाली होती है।

ठेका

1	2	3	4	5	6
धा	धी	ना	धा	तू	ना
×			0		

दुगुन

1	2	3	4	5	6	
धा धी	ना धा	तिं ना	धा धी	ना धा	ति ना	धा
×			0			×

चौगुन

1	2	3	4	5	6
धाधीनाधा	तूनाधाधी	नाधातूना	धाधीनाधा	तूनाधाधी	नाधातूना
×			0		

रूपक

इस ताल में 7 मात्रा, 3 विभाग (3, 2, 2 मात्रा) होते हैं। पहली ताली 4 मात्रा पर व दूसरी ताली छठी मात्रा पर व खाली पहली मात्रा पर है।

ताल सिद्धान्त के अनुसार पहली मात्रा सम है पर इस ताल में खाली सम पर है अतः पहली मात्रा का चिन्ह (×) इस प्रकार लगायेंगे।

ठेका

1	2	3	4	5	6	7
तीं	तीं	ना	धीं	ना	धी	ना
(×)			2		3	

दुगुन

ती ती	ना धी	ना धी	नाती	ती ना	धी ना	धी ना	ती
(×)			2		3		(×)

चौगुन

ती ती ना धी	ना धी ना ती	ती ना धी ना	
×			
धी ना ती ती	न धी ना धी	ती ती ना	धी ना धी ना
2		3	

कहरवा

इस ताल में 8 मात्रा, 2 विभाग (4–4 मात्रा के) होते हैं। एक ताली व एक खाली होती है। पहली मात्रा पर ताली व 5 वीं मात्रा पर खाली होती है

ठेका

1	2	3	4	5	6	7	8
धा	गे	ना	ती	न	क	धी	ना
×				0			

दुगुन

धागे	नाती	नक	धीना	धागे	नाती	नक	धीना
×					0		

चौगुन

धा गे ना ती	न क धी ना	धा गे ना ती	न क धी ना	
×				
धा गे ना ती	न क धी ना	धा गे ना ती	न क धी ना	धा
0				

झूमरा

इस ताल में 14 मात्रा होती है। इसमें 4 विभाग (3–4–3–4 मात्रा) होते हैं। 3 ताली व एक खाली होती है। पहली ताली 1 मात्रा पर, दूसरी ताली 4 मात्रा पर व तीसरी ताली 11वीं मात्रा पर होती है तथा खाली 8वीं मात्रा पर होती है।

ठेका

1	2	3	4	5	6	7
धिं	ऽधा	तिरकिट	धि.	धिं	धागे	तिरकिट
×				2		
8	9	10	11	12	13	14
ति	ऽतो	तिरकिट	धिं	धिं	.	तिरकिट
0			3			

दुगुन

धिं ऽधा तिरकिट धिं धिं धागे | तिरकिट तिं ऽता तिरकिट धिं धिं
× | 2

धागे तिरकिट | धिं ऽधा तिराकिट धिं धिं धागे | तिरकिट तिं
| 0 | 3

ऽता तिराकिट धिं धिं धागे तिरकिट | धिं

चौगुन

धिं ऽधा तिरकिट धिं धि धागे तिरकिट तिं ऽता तिरकिट धिं धिं

धागे तिरकिट धिं ऽधा | तिरकिट धिं धिं धागे तिरकिट तिं ऽता तिरकिट
2

धिं धिं धागे तिरकिट | धिं ऽधा तिरकिटधिं धिं धागे तिरकिट तिं
0

ऽता तिरकिट धिं धिं | धागे तिरकिट धिं ऽधा तिरकिट धिं धिं धागे
3

तिरकिट तिं ऽता तिरकिट | धिं धिं धागे तिरकिट | धिं
×

एकताल

यह ताल 12 मात्रा की होती है। इसमें 6 विभाग (2–2 मात्रा) होते हैं इसमें 4 ताली व 2 खाली होती है। पहली ताली। मात्रा पर, दूसरी 5 मात्रा पर, तीसरी 9 मात्रा पर व चौथी ताली 11 मात्राा पर लगती है। पहली खाली 3 मात्रा पर व दूसरी खाली 7 मात्रा पर लगती है।

ठेका

धिं धिं	धागे तिरकिट	तू ना	क त्ता	धागे तिरकिट	धी ना
×	0	2	0	3	4

दुगुन

धिं धिं धागे तिरकिट | तू ना क त्ता | धागे तिरकिट
×　　　　　　　　　0　　　　　2

धी ना | धिं धिं | धागे तिरकिट | तू ना कत्ता | धागे तिरकिट | धीना
　　　　0　　　　　　　　3　　　　　4

चौगुन

धिं धिं धागे तिरकिट तू ना कत्ता | धागे तिरकिट धी ना
×　　　　　　　　　　　　　0

धिं धिं धागे तिरकिट | तू ना कत्ता धागे तिरकिट धी ना
　　　　　　　　　2

धिं धिं धागे तिरकिट तू ना कत्ता | धागे तिरकिट धी ना
0　　　　　　　　　　　　　3

धिं धिं धागे तिरकिट | तूना कत्ता धागे तिरकिट धी ना
　　　　　　　　　4

चौताल

यह खुले बोल (पखावज) की ताल है इसमें 12 मात्राएँ होती हैं। इसमें 6 विभाग (2–2 मात्र) होते हैं। इसमें 4 ताली व 2 खाली होती हैं पहली ताली। मात्रा पर, दूसरी 5 मात्रा पर, तीसरी 9 मात्रा पर व चौथी ताली 11 मात्रा पर लगती है। पहली खाली 2 मात्रा पर दूसरी खाली 7 मात्रा पर लगती है।

ठेका

धा　धा | दिं　ता | किट　धा | दिं ता | तिट　कत
×　　　　0　　　　2　　　　0　　　3

गदि　गन |
4

दुगुन

धा धा दिं ता किट धा दिं ता तिरकट गदि गन धाधा दिंता
×　　　　0　　　　　2　　　　　0

किट धा दिं ता तिटकता गदि गन धा

चौगुन

धा धा दिं ता किट धा दिंता | तिरकत गदि गीन धा धा दिंता
×　　　　　　　　　　　　0

किट धां दिंता तिट कट गदि गन | धा धा दिंता किट धा दिंता
2　　　　　　　　　　　　0

तिट कत गदि गन धा धा दिं ता | किट धा दिंता तिट कत गदि गंन
3　　　　　　　　　　　　4

तिलवाड़ा

यह ताला 16 मात्रा की होती है। इसमें 4 विभाग (4–4 मात्रा) होते हैं। 3 ताली व एक खाली होती है। पहली ताली सम पर दूसरी ताली 5 मात्रा पर व तीसरी ताली 13 मात्रा पर लगती है जबकि खाली 9 मात्रा पर होती है।

ठेका

धा	तिरकिट धिं धि	धा धा तिं तिं
×		2
ता	तिरकिट धिं धिं	धा धा धिं धिं
0		3

दुगुन

धा तिरकिट	धिं धिं	धा धा	तिं तिं	
×				
ता तिरकिट	धिं धिं	धा धा	धिं धिं	
2				
धा तिरकिट	धिं धिं	धा धा	तिं तिं	
0				
ता तिरकिट	धिं धिं	धा धा	धिं धिं	धा
3				×

चौगुन

धा तिरकिट धिं धिं	धा धा तिं तिं	ता तिरकिट धिं धिं	धा धा धिं धिं	×
धा तिरकिट धिं धिं	धा धा तिं तिं	ता तिरकिट धिं धिं	धा धा धिं धिं	2
धा तिरकिट धिं धिं	धा धा तिं तिं	ता तिरकिट धिं धिं	धा धा धिं धिं	0
धा तिरकिट धिं धिं	धा धा तिं तिं	ता ति किट धिं धिं	धा धा धिं धिं	3

अभ्यासार्थ प्रश्न

विस्तृतीयः–

1. लय किसे कहते हैं ? समझाइये
2. लय का जीवन में क्या स्थान है ? उदाहरण सहित समझाइयें ?

अति लघुउत्तरीयः–

1. लय कितने प्रकार की होती हैं ?
2. लय बिना संगीत है ?
   (क) सम्भव (ख) असम्भव
3. लय प्रकार की होती हैं ?
   (क) 2 (ख) 1 (ग) 3 (घ) 4
4. तीन लाल में कितनी मात्रा होती है। सही का चिन्ह् लगायें।
   (क) 12 (ख) 14 (ग) 15 (घ) 16
5. रूपक में खाली कहां होती है।
   (क) 4 (ख) 6 (ग) 3 (घ) 1
6. झूमरा ताल की ठाह दुगुन चौगुन लिपिबद्ध करके लिखो
7. रूपक की ठाह दुगुन चौगुन लिपिबद्ध करो।
8. अपने पाठ्यक्रम की 16 मात्रा की तालों के नाम व ठेके लिंखो।
9. अपने पाठ्यक्रम के 12 मात्रा की तालों की दुगुन व चौगुन लिखो।

अध्याय–5

स्वरलिपि

स्वरलिपि शब्द का परिचय–

साहित्य, संगीत, कला ये उस अमर आत्मा के उपादान हैं जिनके द्वारा वह युग–युग तक चिरायु रहता है। हृदय के अन्तःस्तल में व्याप्त मनोभावों को भाषा द्वारा अभिव्यक्त करने की प्रेरणा उसी आत्मा से प्राप्त हुई और साहित्य का जन्म हुआ तथा उसी साहित्य को चिरकाल तक सजीव करने के लिये लिपि को निर्मित किया गया।

प्राचीन ज्ञानियों, मनीषियों, वेदवक्ताओं की महाज्ञान वाणी को हम लिपि के कारण ही आत्म सात् कर सके हैं। सृष्टिनिर्माता कृत वेदों, शास्त्रों और पुराणों आदि को हम लिपि के अभाव में समझने की परिकल्पना भी नहीं कर सकते। विश्व के किसी भी क्षेत्र की संस्कृति एवं शास्त्रों का अध्ययन करने के लिये लिपि ही एकमात्र अवलम्ब है। प्रत्येक इतिहास को चिरंजीवी बनाने के लिये लिपि की महत्ता हमारे लिये सार्वभौमिक है।

सामान्यतः संगीत शास्त्रों के लिये स्वरलिपि की संज्ञा प्रचार में है। किन्तु 'स्वरलिपि' शब्द उन सब गुणों से रिक्त है जिसे संगीत की लिपि कहा जाये। संगीत की लिपि में स्वरों के अतिरिक्त लय, मात्रा, ताल, गीत के शब्दों इत्यादि का भी समावेश रहता है। इस प्रक्रिया को ''संगीत लिपि'' कहना अधिक उपयुक्त है।

हमारे लौकिक संगीत का संबंध गांधर्व संगीत से चला आ रहा है। गांधर्व संगीत परम्परा का श्रोत जो भरत मुनि के काल से प्रवाहित है उसकी पूर्व लिपि हमें उपलब्ध नहीं होती किन्तु, यदि वो हमें प्राप्त होती तो शास्त्रों के मार्ग में आने वाली कई समस्यायें सुलझ गई होती । हमारी संस्कृति पर अनेक संस्कृतियों के आक्रमणों के कारण संभवतया उस प्राचीन समय से आ रही लिपि परम्परा का शायद ह्यास हो गया होगा। ऐसा हम अनुमान लगा सकते हैं।
मतंग कृत ''वृहद्देशीय'' व पं. शारंग देव कृत ''संगीत रत्नाकर'' में जो स्वरलिपि हमें प्राप्य है वह अत्यन्त स्थूल है। जो निम्न है :–

सां – जिस स्वर के ऊपर बिन्दु हो, वह मंद्र सप्तक का स्वर माना जाता है।
सां – जिस स्वर के ऊपर खड़ी रेखा हो, वह तार सप्तक का स्वर मानते हैं।
सा– जो स्वर बिना चिन्ह का होता है, उसे मध्य सप्तक का स्वर समझते हैं।
सा – री – गा – भा – पा– ऐसे स्वरों पर दीर्ध आकार लगाने से इन स्वरों का दीर्ध उच्चारण किया जाता है।
सा 3 – जिस स्वर के आगे 3 लिखा होता है वह प्लुत या तीन बार उच्चारित या तीन (बार) मात्रा का गाया जाता है।

इन चिन्हों में लय व ताल के विभागों का अंकन नहीं प्राप्त होता । केवल ह्रस्व व दीर्ध स्वरों की संज्ञाओं से ही मात्राओं का अनुमान लगाया जा सकता है।

उसके उपरान्त लिपि विधि का दर्शन हमें उपलब्ध नहीं हो सकता। किन्तु पाश्चात्य संगीतकारों ने अपनी – अपनी रचनाऐं, स्वरलिपियाँ सोल्फा, चीब्ह, स्टाफ, न्यूक्स में लिपिबद्ध कर विश्व में प्रसारित किया है।

20वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में जब हिन्दुस्तानी संगीत से जनता दूर होने लगी तब पं. विष्णुदिगम्बर पलुस्कर व पं. विष्णु नारायण मातखंडे ने अपनी बुद्धि सामर्थ्य व ज्ञान के अनुरूप पृथक्–पृथक् स्वरलिपि पद्धतियों की रचनायें की। पं. भातखण्डे जी ने अपने अथक परिश्रम से पुराने घरानेदार उस्तादों की बंदिशों को लिपिबद्ध कर सर्व साधारण को सुलभ कराने का प्रयास किया। उनका यह महान् कार्य उनको संगीत रसिकों में युगों तक अमरत्व प्रदान कर गया । उनकी यह स्वरलिपियाँ ''क्रमिक पुस्तक मालिका'' नामक पुस्तक में संग्रहीत है।

वर्तमान भारतीय संगीत लिपि पद्धतियों में सर्वाधिक प्रचलित व लोकप्रिय पं. भातखंडे की स्वरलिपि पद्धति ही है। इसकी लोकप्रियता का प्रधान कारण यही है कि सभी प्रचलित पद्धतियों में बारीकियाँ सरल रूप से अभिव्यक्त नहीं की जा सकती थी, किन्तु भातखण्डे की स्वरलिपि पद्धति में ऐसा सम्भव था।

पं. विष्णुनारायण मातखण्डे की स्वरलिपि पद्धति स्वरलिपि चिन्ह –

1. जिन स्वरों के ऊपर नीचे कोई चिन्ह नहीं होता, उन्हें शुद्ध स्वर मानते

हैं। जैसे – सा रे ग म।

2. जिन स्वरों के नीचे आड़ी रेखा खींची गई हो, उन्हें कोमल स्वर कहते हैं।

जैसे – रे ग ध नि ।

3. स्वरों का तीव्र रूप दर्शाने के लिये उन पर खड़ी रेखा विद्यमान रहती है।

जैसे –मे ।

4. मंद स्वरों के नीचे एक बिन्दु लगा दिया जाता है। जैसे – सा़ ग़ म़ ध।

5. मध्य स्वर सप्तक के लिये कोई चिन्ह नहीं लगाया जाता है। जैसे – ग म प आदि ।

6. तार सप्तक के लिये स्वर के ऊपर बिन्दु लगा दी जाती है। जैसे – रें गं मं पं निं । तथा अति तार सप्तक के लिये स्वर के ऊपर दो बिन्दु अंकित किये जाते हैं। जैसे– रें मं पं निं आदि ।

7. एक मात्रा में कई स्वरों को गाने या बजाने हेतु इस चिन्ह का प्रयोग किया जाता है। जैसे – गम पम गमध पधनिसां

अर्थात् जितने भी स्वर एक चन्द्र में अंकित होंगे, सब एक ही मात्रा काल में वर्णित होगे। तानों में लय की विविधता दर्शाने व लिखने के लिये इन चिन्हों का प्रयोग किया जाता है।

8. स्वरों का दीर्ध करने के लिये इस (–) चिन्ह का प्रयोग किया जाता है। तथा गीत के शब्दों को दीर्ध करने के लिये (ऽ) अवग्रह का प्रयोग किया जाता है।

जैसे – ग – प– ध –

रा ऽ म ऽ ऽ ऽ आदि ।

9. स्वरों के ऊपर ∩ इस प्रकार के चिन्ह को मींड कहते है, अर्थात् म प ध नि इन स्वरों में मध्यम से निषाद तक मींड ली जायेगी।

10. कण स्वर अंकित करने के लिये मूल स्वर के ऊपर छोटा सा वह स्वर अंकित कर दिया जाता है; जिस स्वर का कण लगाना हो। जैसे – सा रे प आदि।

11. जो स्वर कोष्ठक में बंद हो उसे इस प्रकार समझना चाहिये। जैसे–(प) धपमप अर्थात् पहले मूल स्वर के आगे वाला स्वर फिर वहीं स्वर, फिर पीछे वाला स्वर व पुनः वही मूल स्वर आता है। इसे ''खटका'' भी कहा जाता है।

ताल चिन्ह :–

1. ताल में सम दिखाने के लिये ? का चिन्ह होता है।
2. ताल में विराम अथवा खाली दिखाने के लिये 0 शून्य का चिन्ह होता है।
3. राम को पहली मात्रा मानकर अन्य तालियों के लिये क्रमशः 2, 3, 4 आदि संख्या लिखी रहती है।
4. ताल की खाली व ताली के अनुसार जो हिस्से किये जाते हैं, उन्हें विभाग कहा जाता है।

हमारी इस पद्धति में यथा संभव सरलता रखते हुए सूक्ष्मता को कायम रखने का पूर्ण यत्न किया गया है। फिर भी हम यह अनुभव करते हैं कि गायकी में संगीत स्वरलिपि में निर्देशित बहुत सी ऐसी बातें रह जाती हैं, जिन्हें अंकित नहीं किया जा सकता है। अतः स्वरों के उच्चारण एवं गायकी के सूक्ष्म गुणों को गुरु मुख से सीखना हो उचित है। गुरु देव के गले से निकली हुई गुरु वाणी को पूर्ण आत्मसात् कर पूर्ण अनुसरण कर अपने द्वारा उच्चारित कर गाना ही संगीत विद्या का गायन सीखना सफलतम प्रक्रिया है।

प्रचलित –लोक वाद्य

ढोलक

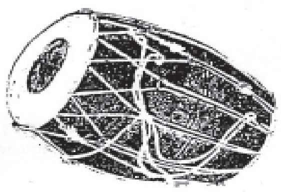

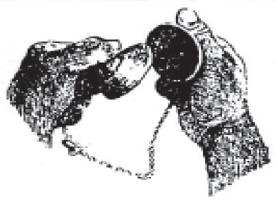

मंजीरा

मादल

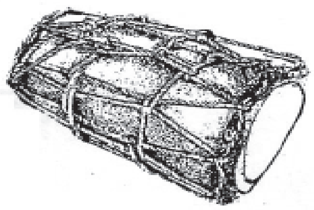

थाली

चंग

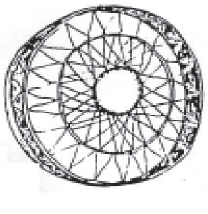

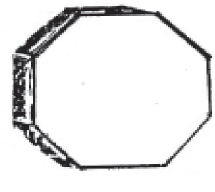

ढफली

अध्याय 6

संगीतात्मक निबन्ध

सामाजिक जीवन में संगीत का महत्त्व

''मनोव्यथा जब असह्य और अपार हो जाती है जब उसे कहीं त्राण नहीं मिलता जब वह रुदन और क्रन्दन की गोद में भी आश्रय नहीं पाती तब वह संगीत के चरणों में जा गिरती है।''

हिन्दी साहित्य के अमूल्य अतुल्य कहानीकार अमर रत्न श्री प्रेमचन्द द्वारा उद्‌धृत यह वक्‌तव्य मानव जीवन की कसौटी पर पूर्ण रुपेण खरा उतरता हैं।

मानव के अन्तः स्थल की दमित भावनाओं को जब किसी माध्यम का अवलम्ब मिलना है और वह सुन्दर रूप में मुखरित होती है तो उसे कला कहा जाता है। और इन सबकी पराकाष्ठा चरम अभिव्यक्ति 'संगीत' है।

संगीत एक ऐसी ललित कला है जिसके स्पर्श मात्र से मानव विश्व से परे, बाह्य आडम्बरों से परे, एक ऐसे नैसैर्गिक सुख को प्राप्त करता है जिसकी अनुभूति अनिर्वचनीय है।

योगी तपस्वी ऐसी, अनुभूति के लिये अपना सम्पूर्ण जीवन कठोर तप में कंदराओं में व्यतीत कर देते हैं। वह सुख संगीत के श्रवण मात्र से अनुभूत करने से प्राप्त होता है।

संगीत का उत्पत्ति मानव के कल्याण के लिये हुई। संगीत अजेय व चिरन्तन है।

वर्तमान युग में समस्त सृष्टि का विनाश सम्भव है किन्तु संगीत का अस्तित्व चिरन्तन है। विश्व की समस्त जातियों चाहे व सभ्य हो अथवा असम्य सुसंस्कृत हो या नहीं किन्तु संगीत का रसास्वादन व भली भाँति कर सकती है।

संगीत की रसानुभूति से मानव मन सभी मानसिक अवसादों व निराशाओं, व विकृतियों से थाह पाता है महाकवि सुमित्रा नन्दन पन्त की पंक्तियों में

वियोगी होगा पहला कवि आह से निकला होगा गान।
निकलकर नयनों से चुपचाप वही होगी कविता अनजान।।

यह स्पष्ट लक्ष्यांकित है कि मनुष्य पीड़ा की चरम अवस्था तथा सुख और खुशी की चरम अवस्था में अपने अन्तरंग की अभिव्यक्ति के लिये संगीत का अवलम्ब लेना ही है।

संगीत में वह आकर्षण शक्ति है कि जीव तथा मृग सर्प आदि भी अपनी चेतन अवस्था को छोड़कर संगीत से मुग्ध हो जाते हैं तो फिर मानव तो सम्पूर्ण बुद्धि जीवी सर्वश्रेष्ठ रचना है।

संगीत के साथ मानव अपनी थकान को भी मिटाता है। खेत में परिश्रम कर रहा किसान, लोहा पीटता मजदूर, भवन बनाता कारीगर, घरेलू परिश्रम कर रही ग्राम वधुयें, सभी उर्जा के इस स्रोत को अपनाकर अपने क्लान्त देह को चैन देती है।

समाज में संगीत के विविध रूप देखने को मिलते है। शास्त्रीय संगीत, फिल्मसंगीत, सुगम संगीत, लोकसंगीत व पाश्चात्य संगीत से उद्घृत पॉप संगीत। संगीत के विविध रूप समाज में मानव के लिये प्रत्येक क्षेत्र में उपयोगी हैं।

शास्त्रीय संगीत ज्ञान के क्षेत्र में बुद्धि जीवी श्रोताओं की जिज्ञासाओं को शांत करता है तथा युवा पीड़ी को रोजगार के नित्य नये अवसर प्रदान करता है। शिष्य वर्ग अपने गुरुओं के सानिन्ध्य में संगीत सीखकर ज्ञान का प्रसार करते हैं।

फिल्म संगीत जनमानस के बेहद समीप है। संगीत द्वारा समाज का हर व्यक्ति अपनी थकान को दूर कर मनोरंजन के लिये अवलम्ब बनाता है। अपनी भावनाओं के अनुरूप फिल्म संगीत को आत्मसात् कर एक नई उर्जा का स्रोत पाता है।

रेडियों, टी.वी. वी.सी.डी. एम.पी. 3 और कैसेट्स के माध्यम से प्राप्त होने वाला संगीत व्यक्ति को निराशाओं कुण्ठाओं, व अवसादों से दूर करता है।

सुगम संगीत का प्रयोग मानव जीवन के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में करता है। सामाजिक प्रतिष्ठानों उत्सवों त्यौहारों के पर्वों के आयोजनों में अथवा ईश्वर की स्तुति के रूप में, भजन एवं फुर्सती क्षणों में गजल के रूप में हम संगीत का उपयोग करते हैं।

लोक संगीत का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। हमारा समाज का हमारे सुखों का हमारी मूलभूत आवश्यकताओं को उत्पादन कर्त्ता वर्ग अपने उर्जा स्रोतों की वृद्धि करने के लिये जिस संगीत को अपनाता है वह लोक संगीत है। किसान, मजदूर, श्रमिक, लुहार, फैक्ट्री में कार्य करने वाला व्यक्ति सफाई कर्मचारी 'जो' हमारी समाज की आवश्यकता की रीढ़ है उन्हें अगर लोक संगीत का सहारा न मिले तो शायद इतनी तत्परता से वे हमारे लिये कार्य न कर सकें।

विवाह उत्सवों में महिलायें संगीत के माध्यम से अपनी भावनाओं का आदान–प्रदान करती हैं। इन सब से हटकर अब वैज्ञानिक क्षेत्र में भी संगीत को आत्मसात् किया जा रहा है। संगीत को मनोचिकित्सा के क्षेत्र में, अपराधिक मानसिक विकृत्तियों को दूर करने के क्षेत्र में शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में, विज्ञापन युग में उत्पादक बड़ी कम्पनियों के विज्ञापन के रूप में संगीत अपने, विभिन्न सोपानों को समाज के लिये उपयोगी बनाने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है।

संगीत प्राणी मात्र के लिये नैतिक व सामाजिक उन्नति के लियें आवश्यक तत्त्व हैं ।

इसीलिये ललित कलाओं में सर्वोपरि कला संगीत का अस्तित्व समाज के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं।

श्रेष्ठ काब्य भी संगीत का अवलम्ब पाकर अमरता पा जाता हैं। काब्य रुपी शरीर में संगीत रूपी आत्मा का निवास हैं।

मनुष्य जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति हेतु भी संगीत, संजीवनी के रूप में कार्य करता है। आत्मा को परमात्मा में समन्वित करने में संगीत एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है।

कविवर रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने भी इसे स्वर्गिक सौन्दर्य का साकार रूप एवं संजीव प्रदर्शन माना है।

प्राचीन काल के महामुनियों व मनीषियों ने इस कला का गुणगान तथा उनके द्वारा निर्मित संगीत

साहित्य में करीब पुस्तकें लिखी गई जिनमें बालबोध संगीत शिक्षक, राष्ट्रीयगीत, महिला संगीत संगीत बाल प्रकाश, भजनामृत लहरी, भक्त प्रेम लहरी मुख्य हैं।

इसके अतिरिक्त आपने 'संगीत सारामृत प्रवाह' नामक मासिक पुस्तिका भी निकाली। आपने लाहौर व बम्बई में संगीत गंधर्व महाविद्यालयों की स्थापना की।

पलुस्कर जी ने राष्ट्रवादी गीतों की रचना की तथा प्रमुख राष्ट्रगीतों को नई धुन देकर जनमानस के लिये सुलभ कराया। इनके शिष्यों में प्रमुख पं. औकार नाथ ठाकुर ने बना तरह किया है।

साहित्य संगीत–कला विहीन :
साक्षात् पशु पुच्छ– विषाणहीनः ।
तृणं न खादनपि जीवमानम्
वद् भागदेयम् परं पशूनाम्।।

इस तरह संगीत द्वारा मनुष्य अपने जीवन निर्वाह में सुचारु रूप प्राप्त करता है।

संगीत अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है जैसा कि लैडन ने कहां है, संगीत तो विश्व व्यापी भाषा है, जहाँ वाणी मूक हो जाती है वहाँ संगीत फूट पड़ता है, संगीत हमारी भाषाओं की नैसर्गिक अभिव्यक्ति का माध्यम है, हमारी अदम्य इच्छाओं को संगीत स्वर का रूप देकर अभिव्यक्ति देता है।

स्वतंत्र भारत में संगीत का प्रचार प्रसार –

भारतीय संगीत की अनादि परम्परा युगों–युगों से गतिमान होकर प्रवाहित होती रही है।

संगीत की उन परम्पराओं का विचरण व प्रसारण भारतीय संस्कृति हमेशा अपने साथ संजोये हुये है।

भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् संगीत को हमारे विख्यात संगीतज्ञों ने एक नया आयाम देकर शिक्षा में समन्वित करने का एक महत्त्वपूर्ण दिशा प्रदान की।

वर्तमान शिक्षण पद्धति में संगीत का समन्वय होने से देश के प्रत्येक युवा नर नारियों में संगीत का प्रसार हुआ। विद्यार्थीगण बालपन से ही शिक्षा के साथ संगीत का ज्ञान अर्जन करने लगे। पं. भातखण्डे पं. पलुस्कर जी द्वारा जगायी, इस अलख में पं. औंकार नाथ ठाकुर व बड़े–बड़े संगीत कारों ने अपनी आहुति दी।

संगीत का बाल साहित्य व सुगम साहित्य प्रकाशन हुआ तथा महिलाओं में संगीत शिक्षा का प्रसार करने के लिये पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

नई धुन देकर जनमानस के लिये सुलभ कराया। इनके शिष्यों में प्रमुख पं. औकार नाथ ठाकुर ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से संगीत को एक महत्त्वपूर्ण दर्जा दिलाया।

पं. विष्णु दिगम्बर पलस्कर के साथ ही पं. विष्णु नारायण भातखण्डे ने संगीत के प्रचार प्रसार में अपना सम्पूर्ण जीवन होम कर दिया।

उनके द्वारा लिखित पुस्तकें क्रमिक पुस्तक मालिका के खण्ड आज भी शास्त्रीय संगीत शिक्षण परम्परा का मूलाधार है। सम्पूर्ण भारत में भ्रमण कर दुर्लभ बंदिशों को एकत्रित कर अपने गंध में संकलन करना और विद्यार्थियों को सुलभ कराने का जो महत्त्वपूर्ण कार्य भातखण्डे जी ने किया वह अकथनीय तथा अनुकरणीय है।

संगीत सम्मेलन के जनक श्री भातखण्डे जी ने ऐसी परम्परा का प्रारम्भ कर दिया जो आज भी भारतीय शास्त्रीय संगीत का रस प्रवाह जन मानस के सम्मुख कर रही है।

क्रमिक पुस्तक मालिका के अतिरिक्त शास्त्रीय संगीत के सैद्धान्तिक पक्ष पर आपने अनेक ग्रंथों का लेखन जिनमें श्री मल्लक्ष्य संगीतम्, संगीत शास्त्र अभिनव राग मंजरी ग्रंथ, संगीतम् संगीत दर्शन आदि प्रमुख है का लेखन किया।

इन संगीतज्ञों के अतिरिक्त स्वतंत्रता के पश्चात् विज्ञान के होने वाले नित्य नये आविष्कारों व परिवर्तनों ने संगीत के प्रचार–प्रसार को नयी दिशायें प्रदान की हैं।

आकाशवाणी समाचार पत्र, संगीत सम्मेलन और दूरदर्शन के द्वारा तथा वर्तमान युग में विभिन्न कैसेट कम्पनियों सी.डी. और वी.सी.डी. के द्वारा शास्त्रीय संगीत भारत के जन मानस तक सुलभता से प्राप्त हैं।

पं. जसराज, पं. रविशंकर, डागुर घराने द्वारा संगीत का विश्व–व्यापी प्रसार सर्वविदित हैं।

घरानेदार गायकी की दुर्लभता अब विश्वविद्यालयीन संस्थागत संगीत शिक्षा का रूप ले चुकी है। युवा संगीत का उत्कृष्ट ज्ञान विविध विद्यालयों व विश्वविद्यालयों द्वारा प्राप्त कर व्यवसाय के क्षेत्र में भी संगीत को आत्मसात् करते हैं।

दूरदर्शन के विविध चैनलों पर प्रस्तुत शास्त्रीय संगीत प्रतियोगितायें भी युवाओं को संगीत के प्रति आकर्षित करती है। और संगीत को व्यवसायोन्मुखी बनाने के लिये प्रेरित करती है।

रेडियों पर अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन, की इस यात्रा की महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

श्रुतिमंडल, स्पिकमैके संकल्प, सप्तक आदि ऐसी प्रमुख संस्थाएं हैं जो प्रख्यात संगीतकारो ंके उत्कृष्ट संगीत को जनमानस में सुलभता से प्रचारित कराती हैं। इन संस्थाओं का योगदान भी अतुलनीय है।

इसके अतिरिक्त वृंदावन में आयोजित हरिदास संगीत समारोह बम्बई में हरिदास सम्मेलन जालंधर के हरिबल्लभ संगीत सम्मेलन, ग्वालियर में तान–सेन संगीत समारोह ऐसी महत्त्वपूर्ण 'कृतियाँ' हैं जिनके द्वारा प्रतिवर्ष हजारों संगीत रसिक सुमधुर संगीत का रसोपान करते रहे हैं।

इस तरह स्वतंत्रता के पश्चात् शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता के लिये उठे ये कदम निश्चय है। संगीत को उस पराकाष्ठा तक ले जाने में सफल होंगे जहाँ भारत का प्रत्येक जन शास्त्रीय संगीत के आवरण में आच्छादित होगा ऐसी हमारी शुभकामनायें हैं।

लोक संगीत –

लोक शब्द से पयार्य विविध कालों में विभिन्न अर्थों में लिया गया है। पुरातन युग में 'लोक' शब्द से अर्थ 'जन' अथवा जगत से है।

किन्तु आधुनिक रूप में लोक शब्द को लोकतंत्र अथवा प्रजा अथवा सम्पूर्ण जनमानस जन सुलभ रूप में व्यवहृत किया गया है।

वह संगीत जिसे प्रजा में जनमानस में मान्यता प्राप्त हो उसके साथ लोक शब्द योजित होता है।

लोक के साथ प्रिय होना संगीत का दूसरी मुख्य आवश्यकता हैं। जन रुचि अनुसार जन सुलभ तथा समाज के प्रत्येक वर्ग के लिये आनन्ददायी संगीत व सभी के मन की भावनाओं को जनसुलभ भाषा में पिरोकर उद्‌गरित होने वाला संगीत लोक संगीत है।

इसका उद्‌भव 'मार्गी' व 'देशी' संगीत के देशी रूप में आज विद्यमान है। महामुनि मवंग ने अपने ग्रंथ बृहद्देशीय में देशी शब्द हेतु वर्णित किया है।

अबला बल गोपालें ; क्षिति पालैर्निजेच्छया।
गीयते सानरागेन स्वदेश देशिरुच्यते ।।

अर्थात् अबला बाल गोपाल तथा राजा अपनी अपनी इच्छा से और बोली में जो अनुराग सहित गाते हैं वही देशी संगीत है।

देशी अथवा लोक संगीत को इससे अधिक स्पष्ट रूप में पारिभाषित और किसी ग्रंथकार ने पश्चात् में नहीं किया।

लोक संगीत मन के अन्तःस्तल की भावनाओं को सरलता से सरल प्रचलित भाषा में गायक के मुख द्वारा प्रवाहित होता है और गायक के साथ–साथ श्रोताओं की भी मन की अभिव्यंजना कर उनकी सारी थकान का आहरण कर आनन्द प्रदान करता है।

शास्त्रों द्वारा उक्त अथवा नियमों में बँधे शास्त्रीय संगीत से यह संगीत बिल्कुल परे है। लोक संगीत में कोई बंधन नहीं कोई नियम नहीं जहाँ मनुष्य अपने मन में उमंग अनुभव करें इसका प्रस्फुटन शब्दों द्वारा उसी समय कर सकता हैं

हमारा देश खेतों का खलिहानों का, धर्मो का, आदर्शो का और विविध ऋृतुओं का देश है। जन–जीवन कर जन्म से लेकर मरण तक ऐसा कोई क्षेत्र नहीं, जो गीतों से दूर है जब मानव मन प्रफुल्लित होता है तब भी संगीत और विषादमय होता है तब भी संगीत का आश्रय लेता है।

विभिन्न सामाजिक अवसरों पर्वों व रीतियों के समय गाये जाने वाले साहित्य को लोक संगीत के नाम से सजाया गया ।

संस्कृति के विभिन्न उपादानों के साहित्य गीतों का पिरोया जाना लोक संगीत का निर्माण बना।

प्रकृति के परिवर्तित विविध आयाम भी लोक गीतों के प्रयोज्य बने। तथा अपने जीविकोपार्जन के लिये किये गये श्रम का आहरण करने व नई उर्जा को प्राप्त करने के लिये बनी स्थिति भी लोक गीतों के निर्माण की स्थिति बनी।

किसी समाज के निवासियों के जीवन स्तर उनके रहन–सहन, आचार विचार और लोक शैली तथा पर्वों का परिचय लोकगीतों द्वारा होता है।

लोकगीत आम जनता के हृदय के स्तर हैं। मानवीय भावनाओं की संगीतमय अभिव्यक्ति है जिसमें काव्य का पाठ और संगीत का सम्मिश्रण है।

लोकगीत पुरुषों अथवा स्त्रियों के समूह में स्त्री द्वारा पुरुष द्वारा बालकों द्वारा तथा युगल व वृंद के रुप में गाये जाते हैं, अधिकतर महिलाओं द्वारा ही लोक गीतों का गायन होता है अतः महिलाओं को लोकगीतों की जननी भी कहा जाता है।

लोक गीतों की विषय वस्तु अत्यन्त व्यापक है। जीवन के हर पहलू पर लोक गीतों का निर्माण हुआ। पारिवारिक जीवन वैयक्तिकता और धार्मिक जीवन व आदेर्शों सभी को तो लोक संगीत में समायोजित किया गया है।

विभिन्न संस्कारों के अवसर पर पुरोहित द्वारा कर्मकाण्ड हो न हो किन्तु लोकगीत गाना परम्पराओं का रूप परिलक्षित होता है।

भारत के विविध प्रान्तों में गाये जाने वाले संगीत में संस्कृति की विविधता का मनोहारी दृश्य जितना स्पष्ट रूप लोक संगीत में दृश्यमान है उतना किसी भी संगीत में नहीं फिर वह चाहे पंजाब का गिद्धा भंगड़ा हो या महाराष्ट्र की लावणी, गुजरात का गरबा, बंगाल का रवीन्द्र संगीत हो, आसाम के या उत्तर प्रदेश के गीत हो अथवा छतीसगढ़ का संगीत हो अथवा राजस्थान का घूमर सभी में ऐसा मनोहारी रूप प्रस्तुत होता है कि भाषा जानने वाला अथवा नहीं जानने वाला श्रोता भी झूम उठता है।

वैवाहिक अवसरों पर विभिन्न प्रांतों में विविध गीतों का गायन होता है सगाई, बंधावा, घोड़ी, चाकभात, रतीजगा, हल्दी बना–बनी समधन वर निकासी, तोरण, हथलेवा, कंवर कलेवा अथवा विवाहपूर्ण

वर–वधू द्वारा की गई आकांक्षा को लोक गीतों में पिरोया जाता है।

लोक गीतों के साथ–साथ विविध वाद्यों को भी निर्मित किया गया। विभिन्न प्रांतों में लोकगीतों के साथ विविध प्रकार के वाद्यों के वादन का प्रचलन है। एकतारा, खसरी, वंशी, नगाड़ा, शहनाई, ढोलक, खड़ताल, मंजीरा, अलगोजा, रावण हत्था, भपंग, आदि ऐसे वाद्य हैं। जिनका प्रयोग लोक संगीत में गीतों में लय देने के लिये व सुन्दरता बढ़ाने के लिये किया जाता हैं।

गाँवों के चौपालों पर, खेतों की मेड़ो पर, घर–घर की देहरियों पर जनमानस के मुख से इस गीत का सुन्दर दर्शन सम्भव है।

लोक गीतों के साथ लोक ग्रन्थों की परम्परा भी अभियोजित है। भारत के प्रत्येक अंचल में प्राकृतिक वातावरण में लोक संगीत के साथ थिरकते कदम लोक नृत्य का रूप पा गये। कतई कच्छी घोड़ी ,घूमर और लूर तथा भँगड़ा लावणी गरबा ऐसे लोक नृत्य हैं जिनका सम्बन्ध उस निश्चित प्रांत से ही नहीं अपितु अन्य प्रान्तों में भी इनका आनन्द लिया जा सकता है।

लोक गीतों के सन्दर्भ में किसी लेखक ने कहा है ''लोकगीतों में कविता और समूह संगीत समाहित होता है जिससे साहित्य को न केवल लेखन अपितु मौलिक परम्परा से चिरकालीन बनाया जाता है।''

अध्याय 7

विविध गायन शैलियों के प्रकार

1. सरगम –

विविध रागों में स्वरों की वह प्रारम्भिक मधुर रचना जो किसी भी ताल में निबद्ध हो सरगम गीत अथवा स्वर मालिका कहलाती है। इसमें गीत के शब्द नहीं होते स्वर ही होते हैं इस गीत का लक्ष्य राग के स्वरूप का चलन का स्पष्ट करना है।

सरगम के दो भाग होते हैं स्थायी अन्तरा। स्थायी में राग के पूर्वांग का चलन तथा अन्तर में राग के उत्तरांग का चलन परिलक्षित होता है। सरगम विविध तालों में गाई जाती है जैसे– त्रिताल, एकताल, रूपक, झपताल आदि में ।

संगीत सीखने के इच्छुक विद्यार्थियों को आरोह अवरोह के पश्चात् सर्वप्रथम सरगम गीत सिखाया जाता है। इसके गाने के अभ्यास से राग का प्रारम्भिक ज्ञान व स्वर ज्ञान में सहायता मिलती है।

लक्षण गीत–

जिस गीत में राग के लक्षणों का वर्णन होता है उसे राग का लक्षण गीत कहते हैं। राग का नाम समय वादी संवादी जाति स्वर गायक समय प्रकृति व समप्राकृतिक रांगों सभी राग लक्षणों की विवेचना लक्षण गीत में प्राप्त होती है ।

लक्षण गीत की रचना छोटे खयाल की तरह होती है और दिन तालों में मध्य लय में के छोटे खयाल गाये जाते है उन्हीं में राग के लक्षण गीत भी स्वरचित होते हैं । इसके स्थायी तथा अन्तरा दो भाग होते हैं सरगम गीत के पश्चात् राग के लक्षणों का ज्ञान कराने के लिये लक्षण गीत सिखाया जाता है ।

ध्रुवपद–

वैदिक संगीत की परम्परा में प्रचलित ध्रुवा गान से उदधटित गायन शैली, उसी के परिवर्तित स्वरूप से मान्य वर्तमान समय में प्रचलित शैली ध्रुवपद है । ध्रुवपद हमारे शास्त्रीय संगीत परम्परा की विशुद्ध शैली है। इसमें हमारे

प्राचीन संगीत के लक्षण अब भी विद्यमान है । वृहत्देशीय के ग्रंथकार मतंग ने इसका नाम चोथा दुर्गशक्ति तथा शारंगदेव ने गुह्यागीति कहा है ।प्रचार में अधिकतर ध्रुवपद हिंदी ब्रज भाषा या उर्दू भाषा में ही गाये जाते हैं ।

संस्कृत भाषी ध्रुवपदों की परम्परा का समापन हो चुका है । ध्रुवपद का प्रारंभ कब और कैसे हुआ यह विवादास्पद विषय है । मुगल बादशाह अकबर के दरबार में ध्रुवपद गायकों को ध्रुवपदिये कहा जाता था । स्वामी हरिदास के विश्वविख्यात शिष्य तानसेन, नायक बैजू, नायक गोपाल, नायक बरब्शू, तथा चिन्तामणि मिश्र इत्यादि के ध्रुवपद प्राप्त हैं ।

ध्रुवपदों का गायन गत शताब्दी के प्रारंभ तक अत्यन्त लोकप्रिय था और अब भी उसका स्वरूप शुद्ध व आदरणीय भी है किन्तु करीब दो सौ वर्षों से खयाल की लोकप्रियता बढ़ने के कारण ध्रुवपद का प्रचलन कुछ कम होता जा रहा है।

ऐसा माना जाता है कि प्रबन्धं गायन की दिलचस्प परम्परा में कुछ सौन्दर्य बोधक तत्त्वों का मिश्रण कर सुगम कर दिया गया तो ध्रुवपद की रचना हुई। ग्वालियर नरेश राजा मानसिंह तोमर ने ऐसे कई ध्रुवपदों की रचना की जो मान 'कौतुहल' नामक ग्रंथ में संरक्षित हैं ।

ध्रुवपद का विस्तार क्षेत्र विस्तृत है इसमें चार भाग होते हैं। स्थायी अन्तरा संचारी आयोग । किंतु वर्तमान में ध्रुवपदों में स्थायी व अन्तरां ही गाने की परम्परा है । ध्रुवपद में आवाज की ओजस्विता के कारण गंभीरता के कारण इसे हिन्दुस्तान का मर्दाना गायन कहा जाता है। यही कारण है कि ध्रुवपद गायकों में महिला गायकों की स्थिति बहुत शीर्ष है। इसमें वीर, श्रृंगार, शांत व भक्ति रस प्रधान है। ध्रुवपद गायकी में तानों का प्रयोग न करके लय के वैविध्य का आधिक्य है। ध्रुवपद गायक रचना से पूर्व गमक युक्त नोम तोम का आलाप मंद सप्तक से मध्य तक करते हैं। ध्रुवपद प्रायः चौताल, सूलफाखता, रूंपक तीव्रा, ब्रह्म, रुद्र, आदि तालों में निबद्ध होते हैं। ध्रुवपद गायकों को 'कलावन्त' भी कहा जाता है।

ध्रुवपद गायन में चार वाणियाँ प्रचलन में हैं ध्रुवपदों के घराने को वाणी की संज्ञा दी गई है। इनमें डागुर गोबरहार नौहार, खंडहार वाणी प्रमुख हैं। खटका, मुर्की, तान आदि बारीकियों का प्रयोग इस गंभीर गायकों में नहीं होता। किन्तु कण, भीड़ गमक व आन्दोलन आदि की शोभा इस गायकी को भव्यता प्रदान करती है। दुगुन, तिगुन चौगुन आड़लय सम विषम आदि लयकारियों का प्रदर्शन ध्रुवपद गायक के कौशल को दर्शाता है। ध्रुवपद की संगति हेतु पखावज का प्रयोग किया जाता है। पखावज के क्लिष्ट प्रश्नों के साथ ध्रुवपदों को क्लिष्ट लयकारियों का संयोजन देखते बनता है।

ख्याल–

ख्याल फारसी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है कल्पना व अनुमान, कुछ विद्वान इसका पर्याय स्वेच्छाचार से भी लेते हैं। हमारी लोक भाषा में इसका अर्थ खेल व खिलौनों से लिया जाता है। इसका अर्थ है लोक रंजन करने वाली ऐसी गान शैली जिसमें मनोरंजन हो। शास्त्रीय संगीत में सौन्दर्य मूलक तत्त्वों से युक्त श्रृंगारिक शैली ख्याल हैं।

ख्याल के सन्दर्भ में ऐसी युक्ति है कि चारों गीतियों के साधारणीकरण से साधारणी गीत बनी और उससे 'ख्याल' गान की उत्पत्ति हुई। अर्थात् चारों गीतियों की विशिष्टताओं का समावेश इस गायन शैली में किया गया। मुगलों के आक्रमणों से पूर्व भारतीय समाज में ध्रुवपद ही गाने का प्रचलन था। मुगलों द्वारा ध्रुवपदों के साहित्य में श्रृंगारिकता का समावेश तथा गायन शैली में सुगमता से सौन्दर्य मूलक तत्त्वों का मिश्रण किया गया तब ख्याल का निर्माण हुआ।

खयाल का गायन की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मत भेद पाये जाते हैं। कुछ विद्वान इसे जोनपुर के सुलतान मोहम्मद हुसैन शर्की द्वारा उत्पन्न तथा कुछ विद्वान अमीर खुसरो द्वारा प्रदत्त मानते हैं किन्तु

इसका निर्माण किसी के द्वारा हुआ हो किन्तु यह सत्य है कि इसका सर्वाधिक प्रचार प्रसार 17वीं शताब्दी में मोहम्मद शाह रंगीले के दरबार में दरबारी गायक सदारंग–अदारंग द्वारा हुआ। इन्होंने हजारों खयाल बनाये और अपने शिष्यों को सिखायें जो आज भी प्रचलित हैं।

खयाल गायन के दो प्रकार प्रचलित है विलम्बित अथवा बड़ा ख्याल तथा द्रुत अथवा छोटा खयाल। विलम्बित लय में गाई जाने वाली ताल में निबद्ध गीत रचना को बड़ा ख्याल तथा द्रुत लय में गाई जाने वाली गीत रचना को छोटा ख्याल कहा जाता है। इसमें स्थायी व अन्तरा दो भाग होते हैं।

अर्थात् ख्याल में गायक राग के नियमों का पालन करते हुए अपनी इच्छा या परिकल्पना से विविध आलाप बोल आलापों लयकारियों व तानों का गायन भीड़ खटका मुर्की सरगम आदि विशेषताओं को मिश्रित कर सौन्दर्यपूर्वक करता है। विलम्बित खयाल की प्रकृति गंभीर तथा छोटे ख्यालों की गति चंचल व चपल होती है। ख्याल का साहित्य भक्ति, करुण व श्रृंगार रसात्मक होता है। इसकी विषय वस्तु में अपने आश्रयदाताओं के गुणों का गान तथा नायक–नायिका वर्णन तथा ईश आराधना प्रमुख है।

विलम्बित ख्याल प्रायः अतिविलम्बित एकताल, आड़ा चौताल, झूमरा व तिलवाड़ा व त्रिताल आदि तालों में निबद्ध होते हैं। जबकि छोटे ख्याल एकताल, त्रिताल, रूपक, पंजाबी, रूपताल, रूपक आदि प्रमुख तालों में गाये बजाये जाते हैं। वर्तमान में वादन में भी ख्याल अंग की बारीकी युक्त सौन्दर्य युक्त अंग के वादन की परम्परा है।

कई विख्यात वादक अपनी गत बजाने से पूर्व उसके साम्य ख्याल को गाकर सुनाते है। खयाल आज सभी गायन शैलियों में सर्वाधिक लोकप्रिय शैली है। इसके विभिन्न घराने प्रचार में हैं जिनमें किराना घराना ग्वालियर घराना, मेवाली घराना, पटियाला, घराना, आगरा घराना जयपुर घराना प्रमुख है।

ग्वालियर घराना अपनी लय के विलम्बितता व चैनदारों व सुकून के लिये प्रसिद्ध था और जयपुर घराना उठी हुई लय खयाल के वैशिष्ट्य के लिये प्रसिद्ध था।

प्रमुख खयाल गायकों में वर्तमान में पं. भीमसेन जोशी पं. जसराज, राशिद खाँ, अजय पोहनकर, जितेन्द्र अभिषेकी, किशोरी अमोणकर, परवीन सुलताना, श्रुति, साढोलीकर, कुमारगंधर्व, आरती आंकलीकर प्रमुख हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सरगम गीत किसे कहते हैं ?

2. ध्रुवपदों का उद्भव किस गीति से हुआ ।

3. 'ख्याल' गायन लोकप्रियता का कारण बताइये ।